Year 4, Issue 13

January-March 2007

VASUDHA EDITOR-PUBLISHER : SNEH THAKORE

# वसुधा

## संपादन व प्रकाशन
## स्नेह ठाकुर

वर्ष ४ - अंक १३, जनवरी-मार्च २००७

# वसुधा

## संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर


| शीर्षक | रचयिता | पृष्ठ |
|---|---|---|
| संपादकीय | | २ |
| संविधान में हिन्दी | डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी | ३ |
| राष्ट्र अभिवादन | स्नेह ठाकुर | ७ |
| चिमगादड़ | मृणाल पांडे | ८ |
| प्यार कर लेना चुभन से | डा. रश्मि अग्रवाल | १२ |
| घर से भागने और लौटने के बीच | विष्णु प्रभाकर | १३ |
| रात के सन्नाटे में | डा. नीरजा माधव | १४ |
| दर्द | मधुप मोहता | १५ |
| सरसता से समरसता तक | डा. संतोष गोयल | १६ |
| ग़ज़ल | शैलजा नरहरि | १६ |
| एकता के क्षेत्र में कामयाबी | नीरज व्यास | १७ |
| चाल उनकी बदलती रही | महेन्द्र नाथ नरहरि | १८ |
| इस्तानबुल....तुम्हारी याद में | दीपमाला वर्मा | १९ |
| कितना अच्छा होता ! | दीपमाला वर्मा | २० |
| कर्मदान | करुणाश्री | २१ |
| नहीं पता था.... | ममता रहेजा | २३ |
| भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका | सुषमा खुल्लर | २४ |
| नारी शक्ति (तब और अब) | डा. सरला अग्रवाल | २७ |
| 'मेरा जीवन एक खुली किताब है' | चन्द्रकांता | २८ |
| खोया हुआ गीत | दिनेशनन्दिनी डालमिया | ३६ |
| लिखना मेरे बेटे | विजय सिंह नाहटा | ३७ |
| ये कैसा अपराध ! | सुधा गोयल | ३८ |
| निर्णय की घड़ी | अक्षय गोजा | ४२ |
| ग़ज़ल को ग़ज़ल ही रहने दीजिये | डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त अग्रहरि | ४३ |
| नये वर्ष में | सरन घई | ४४ |


रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail................................$35.00

Website: http://ca.geocities.com/sneh.thakore/Home.html

# संपादकीय (अंक १३, जनवरी-मार्च २००७)

नव वर्ष में 'वसुधा' अपने साहित्यकारों व पाठकों का अभिनन्दन करती है। कामना करती है कि उनका जीवन मंगलमय हो। भारतवंशियों से आग्रह करती है कि वो हिन्दी के प्रति संकल्पित कटिबद्ध रहें। विदेशों में हिन्दी चार कदम आगे बढ़ती है तो दो कदम पीछे घिसट जाती है। यह एक चिकनी पहा ी के समान दुर्गम्य, दुर्दम्य अवश्य है, इस पर चढ़ना दुरूह, दूभर अवश्य है, पर असम्भव कदापि नहीं। हमें इससे हतोत्साहित नहीं होना है, वरन् इससे प्रेरित होना है कि चाहे हमारी गति धीमी है पर हम एक न एक दिन अवश्य सफलता का शिखर चूमेंगे। वह मंजिल ही क्या जो आसानी से मिल जाये। कठोर परिश्रम से मिली सफलता का आनन्द कुछ और ही है। अतः हमें अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहना है। संशय को मन से निकाल देना है। कर्म पर डटे रहना है क्योंकि कर्म संशय को काटते हैं। हमें यह मानकर चलना है कि हिन्दी के प्रति कोई भी सजग, कर्मशील व्यक्ति अकेला नहीं है। यद्यपि कि अलग-अलग हम एक बूँद हैं पर यही बूँद अपने जैसी अन्य बूँदों को मिला, एकजुट हो, सागर का निर्माण करती है। और सच तो यह है कि बूँद भी अकेली नहीं होती, बूँद में ही समुद्र है और समुद्र में ही बूँद। संकल्प भय नहीं मानता। इरादे नेंक हों तो रुकावटें स्वयं ही मुँह फेर लेती हैं। कभी ऐसी रात्रि नहीं आती जिसके अंधकार में प्रकाश दस्तक न देता हो। सृजन अंधकार का ही प्रकाश है। मनुष्य की सबसे ब ी भूल ही यह है कि वह सोचता है कि वह दुर्बल है। दुर्बलता, अकर्मण्यता, मृत्यु है। बल, कर्मठता ही जीवन है। बल, कर्म, तमाम भाव-रोगों की एकमात्र औषधि है। अतः आइये, आज पुनः नये वर्ष के आगमन पर हिन्दी के उत्थान के प्रति किये गये संकल्प की पुनरावृत्ति करें, उसमें नव-प्राण फूँकें।

४ नवम्बर २००६ की शाम को हिन्दू इंस्टीच्यूट आफ लर्निंग ने अपना सोलहवाँ वर्ष मनाया। संस्था व संत ज्ञानेश्वर आश्रम के विद्यार्थियों ने, जिनमें अधिकांश अहिन्दी-भाषी कनेडियन थे जो उन संस्थाओं में हिन्दी, संस्कृत, संगीत आदि विषयों का अध्ययन कर रहे हैं, व शिक्षकों ने मिलकर, एक भव्य सांस्कृतिक समारोह का आयोजन कर संस्था के संस्थापक चौरासी वर्षीय, नवयुवकीय उत्साह रखने वाले, शास्त्री जी के साथ ही साथ अनेकानेक भारतवंशियों का हृदय गद्‌गद् कर दिया। मेरा सौभाग्य था कि इस समारोह के संचालन कार्य हेतु मुझे चुना गया।

गत वर्ष वसुधा की प्रतिष्ठित, गणमान्य लेखिका श्रीमती दिनेश नन्दिनी डालमिया जी का निधन ७ अक्टूबर, २००६ को हो गया, जो न केवल 'वसुधा' की, वरन् सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की भारी क्षति है। यद्यपि कि उनका पार्थिव शरीर हमसे जुदा हो चुका है पर उनका साहित्य हमें कालांतर तक उनकी याद दिलाये रखेगा। मेरे दिल्ली प्रवास के समय, उनके निवास स्थान पर उनसे हुई स्नेहिल भेंट मेरी चिर स्मृति में सदैव अंकित रहेंगी। जिस आशिर्वाद भरे कर-कमलों से दीदी जी ने (उन्हें प्यार से दीदी कहते थे) मुझे अपने स्नेहिल अंक में समेटा था वह मेरी अमूल्य धरोहर है। अब तो स्मृति-चिन्ह छाया-चित्रों से ही दिल बहलाना होगा। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनका साहित्य हमारा मार्गदर्शन करता रहे, हमारी प्रेरणा-स्त्रोत बना रहे।

यह वसुधा का सौभाग्य है कि इस वर्ष दूसरे देशों से भी कुछ और हिन्दी-प्रेमी इससे जु`। हिन्दी के प्रति इस अभियान में सहायक इन हिन्दी-प्रेमियों का 'वसुधा' तहेदिल से स्वागत करती है। उनकी आभारी है।

'संस्कृति की रक्षा के लिये
भाषा की रक्षा है जरूरी
हिन्दी के उत्थान के लिये
करना है हमें प्रयत्न भारी।'

नव वर्ष की मंगल-कामनाओं सहित,

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

# संविधान में हिन्दी

डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत एक पुरातन देश है, किंतु राजनीतिक दृष्टि से एक आधुनिक राज्य के रूप में भारत का विकास एक नये सिरे से ब्रिटेन के शासन-काल में, स्वतंत्रता-संग्राम के साहचर्य में और राष्ट्रीय स्वाभिमान के नवोन्मेष के सोपान में हुआ। हिन्दी भाषा एवं अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं ने राष्ट्रीय स्वाभिमान और स्वतंत्रता-संग्राम के चैतन्य का शंखनाद घर-घर तक पहुँचाया, स्वदेश प्रेम और स्वदेशी भाव की मानसिकता को सांस्कृतिक और राजनीतिक आयाम दिया, नवयुग के नव-जागरण को राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय स्वशासन के साथ अंतरंग और अविच्छिन्न रूप से जो  दिया।

## भाषाओं की भूमिका

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वे भाषाएँ भारतीय स्वाधीनता के अभियान और आंदोलन को व्यापक जनाधार देते हुए लोकतंत्र की इस आधारभूत अवधारणा को सम्पुष्ट करती रहीं कि जब आज़ादी आयेगी तो लोक-व्यवहार और राज-काज में भारतीय भाषाओं का प्रयोग होगा।

## एक भाषा : प्रशासन की भाषा

आज़ादी आई और हमने संविधान बनाने का उपक्रम शुरू किया। संविधान का प्रारूप अँग्रेजी में बना, संविधान की बहस अधिकांशतः अँग्रेजी में हुई। यहाँ तक कि हिन्दी के अधिकांश पक्षधर भी अँग्रेजी भाषा में ही बोले। यह बहस १२ सितम्बर १९४९ को ४ बजे दोपहर में शुरू हुई और १४ सितम्बर १९४९ के दिन समाप्त हुई। प्रारम्भ में संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अँग्रेजी में ही एक संक्षिप्त भाषण दिया। उन्होंने कहा कि भाषा के विषय में आवेश उत्पन्न करने या भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए कोई अपील नहीं होनी चाहिए और भाषा के प्रश्न पर संविधान सभा का विनिश्चय समूचे देश को मान्य होना चाहिए। उन्होंने बताया कि भाषा सम्बन्धी अनुच्छेदों पर लगभग तीन सौ या उससे भी अधिक संशोधन प्रस्तुत हुए।

१४ सितम्बर की शाम बहस के समापन के बाद जब भाषा संबंधी संविधान का तत्कालीन भाग १४ क और वर्तमान भाग १७, संविधान का भाग बन गया तब डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने भाषण में बधाई के कुछ शब्द कहे। वे शब्द आज भी प्रतिध्वनित होते हैं। उन्होंने तब कहा था, 'आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जब कि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है, जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी।' उन्होंने कहा, 'इस अपूर्व अध्याय का देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव प ेगा।' उन्होंने इस बात पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की कि संविधान सभा ने 'अत्याधिक बहुमत' से भाषा-विषयक प्रावधानों को स्वीकार किया। अपने वक्तव्य के उपसंहार में उन्होंने जो कहा वह अविस्मरणीय है। उन्होंने कहा, 'यह मानसिक दशा का भी प्रश्न है जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव प ेगा। हम केन्द्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उससे हम एक-दूसरे के निकटतर आते जाएँगे। आख़िर अँग्रेजी से हम निकटतर आए हैं, क्योंकि वह एक भाषा थी। अँग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है। इससे अवश्यमेव हमारे संबंध घनिष्ठतर होंगे, विशेषतः इसलिए कि हमारी परम्पराएँ एक ही हैं, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बातें एक ही हैं। अतएव यदि हम इस सूत्र को स्वीकार नहीं करते तो परिणाम यह होता कि या तो इस देश में बहुत-सी भाषाओं का प्रयोग होता या वे प्रांत पृथक हो जाते जो बाध्य होकर किसी भाषा विशेष को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। हमने यथासंभव बुद्धिमानी का कार्य किया है और मुझे हर्ष है, मुझे प्रसन्नता है और मुझे आशा है कि भावी संतति इसके लिए हमारी सराहना करेगी।'

## संघ की भाषा

संविधान-सभा की भाषा-विषयक बहस लगभग २७८ पृष्ठों में मुद्रित हुई है। भाषा-विषयक समझौते की बातचीत में मेरे पितृतुल्य एवं कानून के क्षेत्र में मेरे गुरु डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी एवं श्री गोपाल स्वामी आयंगार की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह सहमति हुई कि संघ की भाषा हिन्दी

और लिपि देवनागरी होगी, किंतु देवनागरी में लिखे जाने वाले अंकों तथा अँग्रेजी को १५ वर्ष या उससे अधिक अवधि तक प्रयोग करते रहने के बारे में ब ी लंबी-चौ ी गरमागरम बहस हुई। अंत में आयंगर-मुंशी फ़ार्मूला भारी बहुमत से स्वीकार हुआ। वास्तव में अंकों को छो कर संघ की राजभाषा के प्रश्न पर अधिकांश सदस्य सहमत हो गये। अंकों के बारे में भी यह स्पष्ट था कि अन्तर्राष्ट्रीय अंक भारतीय अंकों का ही एक नया संस्करण है। कुछ सदस्यों ने रोमन लिपि के पक्ष में प्रस्ताव रखा, किंतु देवनागरी के पक्ष में ही अधिकांश सदस्यों ने अपनी राय दी।

**हिन्दी का अपहरण**

आशंकाओं का खांडव-वन तब दिखाई देने लगा, जब पन्द्रह वर्ष की कालावधि के बाद भी अँग्रेजी भाषा के प्रयोग की बात सामने आई। वे आशंकाएँ सच साबित हुईं। पन्द्रह वर्ष १९६५ में समाप्त होने वाले थे। उससे पूर्व ही संसद में उस अवधि को अनिश्चितकाल तक बढ़ाने का प्रस्ताव पेश हुआ। तब मैं लोकसभा का निर्दलीय सदस्य था। स्व.लाल बहादुर शास्त्री, पंडित नेहरू की मंत्रीपरिषद् के वरिष्ठ सदस्य थे और उन्हीं को यह कठिन काम सौंपा गया। कुछ सदस्यों ने कार्यवाही के बहिष्कार के लिए सदन-त्याग किया। तब मैंने कहा कि मुझे तो सदन में प्रवेश के लिए और अपनी बात कहने के लिए चुना गया है, सदन के बहिष्कार और सदन-त्याग के लिए नहीं। सदन में मैंने अकेले ही प्रत्येक अनुच्छेद एवं उपबंध का विरोध किया। बाद में श्रद्धेय शास्त्री जी ने ब ी आत्मीयता के साथ संसद की दीर्घा में ख े-ख े कहा, 'आपकी बात मैं समझता हूँ, सहमत भी हूँ, किंतु लाचारी है, आप इस लाचारी को भी तो समझिए।' अब सांविधानिक स्थिति यह है कि नाम के वास्ते तो संघ की राजभाषा हिंदी है और अँग्रेजी सहभाषा है, जबकि वास्तव में अँग्रेजी ही राजभाषा है और हिंदी केवल एक सहभाषा। लगता है कि संविधान में इन प्रावधानों का प्रारूप बनाते समय कुछ संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क में यह बात पहले से थी। हुआ यह कि राजनीति की भाषा और भाषा की राजनीति ने मिल कर हिंदी की नियति का अपहरण कर लिया।

**संसद में हिंदी के प्रबल पक्षधर कम हैं**

संविधान सभा में श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने अपने भाषण में यह स्पष्ट ही कह दिया था कि हमें अँग्रेजी भाषा को कई वर्षों तक रखना प ेगा और लंबे समय तक उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में भी सभी कार्यवाहियाँ, अँग्रेजी भाषा में ही होंगी एवं अध्यादेशों, विधेयकों तथा अधिनियमों के प्राधिकृत पाठ अँग्रेजी भाषा में ही होंगे। इस लम्बे होते जा रहे समय में मुझे एक अविचल स्थायी भाव की आहट सुनाई देती है। मुझे नहीं लगता है कि आने वाले पच्चीस वर्षों में उच्चतम न्यायालय या अहिंदी भाषी प्रदेशों के उच्च न्यायालय हिन्दी में अपनी कार्यवाही करने को तैयार होंगे। तब तक हिंदी के प्रयोग की संभावना और भी अधिक धूमिल हो जायेगी। यह अवश्य है कि हिंदी भाषी प्रदेशों में, न्यायालयों में हिंदी धीरे-धीरे बढ़ रही है, किंतु जजों के स्थानान्तरण की नीति हिंदी के प्रयोग को अवश्यमेव अवरुद्ध करेगी। उच्च न्यायालयों के अंतर्गत दूसरे न्यायालयों में प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग काफी बढ़ा है, किंतु उनको भी अधिनियमों एवं उपनियमों के प्राधिकृत पाठ के लिए एवं नाज़िरों के लिए बहुधा अँग्रेजी भाषा की ही शरण लेनी प ती है। विधान मंडलों में प्रादेशिक भाषाएँ पूरी तरह चल प ी हैं। संसद में इधर हिंदी में भाषण देने वालों की संख्या बढ़ी है, किंतु हिंदी के प्रबल पक्षधर कम हैं। राष्ट्रीय राजनीति के प्रादेशीकरण के चलते अब हिंदी को फूँक-फूँककर कदम रखना होगा, किंतु हिंदी का संघर्ष प्रादेशिक भाषाओं से नहीं है, उसके रास्ते में अँग्रेजी के स्थापित वर्चस्व की बाधा है।

**हिंदी का विकास संसद के माध्यम से**

जब संविधान पारित हुआ तब यह आशा और प्रत्याशा जागरूक थी कि भारतीय भाषाओं का विस्तार होगा, राजभाषा हिंदी के प्रयोग में द्रुत-गति से प्रगति होगी और सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होगी। संविधान के अनुच्छेद ३५० में निर्दिष्ट है कि किसी शिकायत के निवारण के लिए प्रत्येक व्यक्ति संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में प्रतिवेदन देने का हकदार होगा। १९५६ में अनुच्छेद ३५० क संविधान में अंतःस्थापित हुआ और यह निर्दिष्ट हुआ कि प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्ति सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास किया जाए। अनुच्छेद ३४४ में राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति गठित करने का निर्देश दिया गया। प्रयोजन यह था कि संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग हो, संघ और राज्यों के बीच राजभाषा का प्रयोग बढ़े,

संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए अँग्रेजी भाषा के प्रयोग को सीमित या समाप्त किया जाए। हिंदी भाषा के विकास के लिए यह विशेष निर्देश अनुच्छेद ३५१ में दिया गया कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके एवं उसका शब्द-भंडार समृद्ध और संवर्धित हो।

**संकल्प खो गया**

हिंदी के विषय में लगता है कि संविधान के संकल्पों का निष्कर्ष कहीं खो गया है। सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की शक्ति, क्षमता और सामर्थ्य अकाट्य, अदम्य और अद्वितीय है, किंतु सहज ही मन में प्रश्न उठता है कि हमने संविधान के सपनों को साकार करने के लिए क्या किया? क्यों नहीं हमारे कार्यक्रम प्रभावी हुए? क्यों और कैसे अँग्रेजी भाषा की मानसिकता हम पर और हमारी युवा एवं किशोर पीढ़ियों पर इतनी हावी हो चुकी है कि हमारी अपनी भाषाओं की अस्मिता और भविष्य संकट में है? शिक्षा में, व्यापार और व्यवहार में, संसदीय, शासकीय और न्यायिक प्रक्रियाओं में हिंदी को और प्रादेशिक भाषाओं को पाँव रखने की जगह तो मिली, संख्या का आभास भी मिला, किंतु प्रभावी वर्चस्व नहीं मिल पाया। वोट माँगने के लिए, जन-साधारण तक पहुँचने के लिए आज भी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है, किंतु हमारे अधिकारी वर्ग और हमारे नीति-निर्माताओं के चिन्तन में अभी भारतीय भाषाओं के लिए, हिंदी के लिए अँग्रेजी भाषा के समकक्ष कोई स्थान नहीं है। हमारी अंतर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीय ज ों से रहित होती जा रही है। जनता-जनार्दन से जीवंत सम्पर्क का अभाव हमारी अस्मिता को निष्प्रभ और खोखला कर देगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

**विदेशी भाषा से राष्ट्र महान नहीं बनता**

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में १३ सितम्बर १९४९ के दिन बहस में भाग लेते हुए यह रेखांकित किया था कि यद्यपि अँग्रेजी से हमारा बहुत हितसाधन हुआ है और इसके द्वारा हमने बहुत कुछ सीखा है तथा उन्नति की है, 'किसी विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र महान नहीं हो सकता।' उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की सोच को आधारभूत मानकर कहा कि विदेशी भाषा के वर्चस्व से नागरिकों में दो श्रेणियाँ स्थापित हो जाती हैं, 'क्योंकि कोई भी विदेशी भाषा आम लोगों की भाषा नहीं हो सकती।' उन्होंने मर्मस्पर्शी शब्दों में महात्मा गाँधी के दृष्टिकोण को प्रतिपादित करते हुए कहा, 'भारत के हित में, भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हित में, ऐसा राष्ट्र बनाने के हित में जो अपनी आत्मा को पहचाने, जिसे आत्मविश्वास हो, जो संसार के साथ सहयोग कर सके, हमें हिंदी को अपनाना चाहिये।'

**राष्ट्रीय सहमति का संकल्प क्षीण हो गया**

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने बहस में भाग लेते हुए हिंदी भाषा और देवनागरी का राजभाषा के रूप में समर्थन किया और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय अंकों को मान्यता देने के लिए अपील की। उन्होंने इस निर्णय को ऐतिहासिक बताते हुए संविधान सभा से अनुरोध किया कि वह, 'इस अवसर के अनुरूप निर्णय करे और अपनी मातृभूमि में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में वास्तविक योग दे।' उन्होंने कहा कि अनेकता में एकता ही भारतीय जीवन की विशेषता रही है और इसे समझौते तथा सहमति से प्राप्त करना चाहिए। उन्होंने कहा कि हम हिंदी को मुख्यतः इसलिए स्वीकार कर रहे हैं कि इस भाषा के बोलनेवालों की संख्या अन्य किसी भाषा के बोलनेवालो से अधिक है - लगभग ३२ करो  में से १४ करो  (१९४९ में)। उन्होंने अन्तरिम काल में अँग्रेजी भाषा को स्वीकार करने के प्रस्ताव को भारत के लिए हितकर माना। उन्होंने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया और कहा कि अँग्रेजी को हमें 'उत्तरोत्तर हटाते जाना होगा।' साथ ही उन्होंने अँग्रजी के आमूलचूल वहिष्कार का विरोध किया। उन्होंने कहा, 'स्वतंत्र भारत के लोगों के प्रतिनिधियों का कर्तव्य होगा कि वे इस संबंध में निर्णय करें कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उत्तरोत्तर किस प्रकार प्रयोग में लाया जाए और अँग्रेजी को किस प्रकार त्यागा जाए।

यदि हमारी धारणा हो कि कुछ प्रयोजनों के लिए हमेशा अँग्रेजी ही प्रयोग में आए और उसी भाषा में शिक्षा दी जाए तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। उन्होंने भाषा परिषदों की स्थापना का सुझाव दिया ताकि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का सुचारू और तुलनात्मक अध्ययन हो। सभी

भाषाओं की चुनी हुई रचनाओं को देवनागरी में प्रकाशित किया जाये और वाणिज्यिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और कला संबंधी शब्दों को निरपेक्ष रूप से निश्चित किया जाए।

किंतु महात्मा गाँधी की दृष्टि और उनका कार्यक्रम, पं. नेहरू की सोच और डॉ. मुखर्जी के सुझाव क्यों नहीं क्रियान्वित हुए? क्यों राष्ट्रीय सहमति का संकल्प क्षीण और शिथिल हो गया?

## हिंदी विरोध राष्ट्र की प्रगति में बाधक

१९४९ से लेकर आज तक अर्द्धशताब्दी में हम राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की यह घोषणा साकार नहीं कर पाए -

'है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी
हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी'

स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गाँधी ने देश के भविष्य के लिए, देश की एकता और अस्मिता के लिए हिंदी को ही राष्ट्र की सम्पर्क भाषा माना। भारतेन्दु ने सूत्ररूप में कहा, 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।'

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबंध में लिखा है, 'जिस हिंदी भाषा के खेत में ऐसी सुनहरी फसल फली है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही प ी रहे, तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता नहीं मर सकती, वहाँ फिर खेती के सुदिन आएँगे और पौष मास में नवान्न उत्सव होगा।' जैसा कि मेरे गुरु कुलपति कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने कहा था, 'हिंदी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की भारती के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने यह घोषणा की थी, 'हिंदी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।'

महात्मा गाँधी ने भागलपुर में महामना पंडित मदनमोहन मालवीय का हिंदी भाषण सुन कर अनुपम काव्यात्मक शब्दों में कहा था कि, 'पंडितजी का अँग्रेजी भाषण चाँदी की तरह चमकता हुआ कहा जाता है, किंतु उनका हिंदी भाषण इस तरह चमका है - जैसे मानसरोवर से निकलती हुई गंगा का प्रवाह सूर्य की किरणों से सोने की तरह चमकता है।' हमारे पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी का प्रत्येक भाषण भी इसी प्रकार सूर्य की किरणों से सोने की तरह चमकता हुआ गंगा के प्रवाह की तरह लगता है। फिर क्यों हिंदी का प्रवाह रुका हुआ है?

## मंज़िल दूर है

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, जिन्होंने राजभाषा के रूप में एक समय हिंदी का विरोध किया था, ने स्वयं १९५६-५७ में यह माना कि हिंदी भारत में बहुमत की भाषा है, राष्ट्रीय भाषा होने का दावा कर सकती है और भविष्य में हिंदी का भारत की राष्ट्रभाषा होना निश्चित है। उन्होंने यह भी कहा कि भारत के सभी भागों में सारी शिक्षा का एक उद्देश्य हिंदी का पूर्ण ज्ञान भी होना चाहिए और यह आशा प्रकट की कि संचार-व्यवस्था और वाणिज्य की प्रगति निश्चय ही यह कार्य सम्पन्न करेगी। स्व. गंगाशरण सिंह, कविवर रामधारी सिंह दिनकर, प्रकाशवीर शास्त्री और शंकारदयाल सिंह का योगदान आज याद आता है, किंतु हमारी यात्रा अभी अधूरी है, मंज़िल बहुत दूर और दुःसाध्य है, पर हमें हिंदी के लिए की गई प्रतिज्ञाओं का पाथेय लेकर चलते रहना है।

## हिंदी का तुलसीदल कहाँ है?

लंदन में छठा विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ। ब्रिटेन में कुछ ही वर्षों में मैंने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाएँ बनाईं, उन्हें प्रोत्साहन दिया और भारतवंशी लोगों में हिन्दी के प्रति एक नयी ललक, एक नया उत्साह, एक समर्पित निष्ठा पाई, किंतु विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी का वैश्विक अंतर्राष्ट्रीय मंच है, जिसका उद्‌गम है भारत। अगर विश्व हिंदी सम्मेलन हमें यह पूछे कि भारत में हिंदी का आंदोलन, अभियान क्यों शिथिल प  गया है, क्यों भारत अपने संविधान का संकल्प और सपना अब तक साकार नहीं कर पाया, तो हम क्या उत्तर देंगे? जब तक भारत में हिंदी नहीं होगी, विश्व में हिंदी कैसे हो सकती है? जब तक हिंदी भाषा राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा नहीं बनती, जब तक हिंदी शिक्षा का माध्यम एवं शोध और विज्ञान की भाषा नहीं बनती और जब तक हिंदी शासन, प्रशासन, विधि नियम और न्यायालयों की भाषा नहीं बनती, भारत के आँगन में नवान्न का उत्सव कैसे होगा, हिंदी का तुलसीदल कैसे पल्लवित होगा?

**मैं हिंदी की तूती हूँ**

मुझे याद आता है सदियों पुराना अमीर खुसरो का फ़ारसी में यह कथन कि 'मैं हिंदी की तूती हूँ, तुम्हें मुझसे कुछ पूछना हो तो हिंदी में पूछो, तब मैं तुम्हें सब कुछ बता दूँगा।' कब आयेगा वह स्वर्ण विहान जब अमीर खुसरो के शब्दों में हिंदी की तूती बजेगी, बोलेगी और भारतीय भाषाएँ भारत माता के गले में एक वरेण्य, मनोरम अलंकार के रूप में सुसज्जित और शोभायमान होंगी। यह उपलब्धि राज्यशक्ति और लोकशक्ति के समवेत, संयुक्त और समर्पित प्रयत्नों से ही संभव है।

## राष्ट्र अभिवादन

**स्नेह ठाकुर**

हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

तन से, मन से, धन से
तन, मन ,धन, जीवन से
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

हृदय से, वाणी से, निश्छल, निर्मल मति से
श्रद्धा से नतमस्तक
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

खिलते शैशव से, उमगते यौवन से
प्रौढ़ता की प्रज्ञा से, गौरव से
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

ले सीख इतिहास से, अतीत के गौरव से
सुखद भविष्य का निर्माण करें
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

बँधें कर्तव्य से, तिरंगे की शान से
सर ऊँचा उठा गर्व से
हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

# चिमगाद`

मृणाल पांडे

टिन की छत पर पहले एक छितराई-छितराई-सी आवाज़ हुई, जैसे किसी शैतान बच्चे ने कंकरियाँ उछाल दी हों....एक क्षण एक बोझिल सन्नाटा - और फिर तर -तर , एक झटके के साथ बौछार खुल कर बरस प ी। मारिया चौंक कर उठ बैठी। अभ्यस्त हाथों से तकिये के नीचे से चश्मा निकाल कर चढ़ा लिया और अपनी चुँधियाई आँखें मिचमिचाती, कुछ देर वह खि की के परे प ती बूँदों को ताकती रही।....

मौसम की पहली बरसात थी। एक गुनगुनी गर्मी लिये हुए ज़मीन का सोंधापन उठा और कमरे में भर गया। धारों की चमकीली निरंतरता में बीह हवा आ`-तिरछे 'पैटर्न' बनाये जा रही थी। एक हल्की बौछार खि की की मुंडेर को भिगो गई....टप-टप....टप-टप....कोने की टूटी नाली से चमकीली बूँदें काँप-काँप कर गिर रही थीं।

'अरी कमबख़्त उठ, देख तो कितनी प्यारी बरसात हो रही है।' मारिया ने बगल की पलंग पर बेखबर सोती सोनिया का कम्बल खींचा।

'चुप भी मारी - ' उनींदी झि की के साथ सोनिया ने करवट बदल ली।....

....मारी खिसियाई-सी कुछ देर नाख़ून कुतरती रही, फिर हाथ बढ़ाकर कुर्सी से अपना काला 'हाउसकोट' उठा लिया और कमर का फीता कसती बाहर निकल आई।....ऐन सीढ़ियों के पास छत फिर चूने लगी थी - 'अँह, यह घर भी कोई घर है ! टप ा कहीं का !' वह बाथरूम से चिलमची लाने ममा के कमरे में घुस गई।

'क्या हाल है ममा? नींद आई ठीक से?'

ममा सूखी तोरई-सी बाँहों से सीना थामे आदतन काँख रही थी - 'हाय मेरे ईसू, अब पास बुला ले।' 'हँह ! सभी को बुलाता है एक तेरी ही बारी नहीं आती है।' वह टपकती छत के नीचे चिलमची रखती बुदबुदाई। फिर लगभग चीखते हुए भीतर झाँका - 'क्या हुआ? फिर गैस हो रही है क्या पेट में?' ममा की लगभग अंधी मटमैली-सलैटी आँखें उधर को मु ी - 'अरे जैसी हालत है, मैं ही जानती हूँ....ऐसा दर्द उठता है कि बस, जान खिंची जाती है। इस डॉक्टर लाल की तो दवा ही बेकार है....क्या भरोसा इन नेटिव डॉक्टरों का - थूः' ममा ने पलंग के नीचे रखे पैन में थूक दिया - 'मुँह का स्वाद जाने कैसा हो गया है। बस फायदा तो डॉक्टर डैनियल की दवा ही करती थी ....या मेरे ईसू....'

बातचीत का रुख मनचाही दिशा में मु ता देख, मारिया ने अपनी भरकम देह दरवाजे से टिका दी और फुर्सत से ख ी हो गई - ममा बात तो ये है कि जब तक तू अपनी ज़ुबान को कंट्रोल नहीं करेगी, कोई डॉक्टर-हकीम तेरे मर्ज़ की दवा नहीं कर सकता। अब डिनर में जबर्दस्ती चावल खा ले, ऊपर से चॉकलेट भी चबा ले तो डायबिटीज़ बिग`गी नहीं क्या?'

ममा का पोपला मुँह उत्तेजना में ऊँट के थोब` की तरह वलवलाने लगा - 'तेरा - सोनिया का क्या है। तुम दोनों के लिए तो मैं बस एक जिन्दा लाश-भर हूँ।....तुम्हारा बस चले तो कुत्ते की तरह बस एक सूखी रोटी डाल दो।' -ममा के झुर्रीदार गालों पर आँसू चूने लगे - 'ठीक कहते थे डॉक्टर डैनियल कि अगाथा, आदमी का अपना ही ख़ून सबसे ज्यादा दगा देता है ! क्या मालूम था मुझे, मेरे ईसू कि अपनी ही बेटियाँ रोटी-रोटी पर टोकेंगी -"

ममा का संलाप स्वगत भाषण में बदल गया था। अब बुढ़िया घण्टों बिलखेगी। तृप्त भाव से अपने चश्मे की कमानी ठीक करती, मारिया जीर्ण सीढ़ियाँ उतरने लगी....सामने तमाम दीवारों पर सीलन से चकत्ते-से उभर आये थे। प्लास्टर भी जगह-जगह फूल कर झ ने-झ ने को हो रहा था। थो ी देर मारिया उदास आँखों से ताकती रही....सारी की सारी इमारत जैसे गल-गलकर बैठती जा रही है। सारा बगीचा झा -झंखा  से भरा हुआ, फव्वारे में सूखी पत्तियों के ढेर....हँह कोई घर है यह भी ! एक उसाँस लेकर वह सीढ़ियाँ उतर गई....

पैंट्री में बूढ़ा सैम्युअल तसले में चावल धो रहा था। लाल बदसूरत चावल। फिर वही बदबूदार

भात मिलेगा, मारी कुढ़ गई - 'क्यों इस बार भी यही स ा चावल ले आया तू?' सैम्युअल उपेक्षा से चावल का पानी निथारता रहा, पोपले मसूढ़े कुछ हिले। राशन का माल है, ऐसा नहीं तो कैसा होगा? . . . '

'पानी गरम हुआ?'

'अभी हो जाता है' - सैम्युअल ने मैली कमीज पर गीले हाथ पोंछे और भट्टी के ऊपर चढ़ी देग में झाँकने लगा - 'बस, बीस मिनट और -'

मारी बुरी तरह भन्ना गई - 'आज तक तूने कभी पानी ठीक टाइम पर दिया है क्या? अब किससे नहाऊँ, बता? सैम्युअल लापरवाही से देग का ढकना सीधा करता हुआ, कुछ बुदबुदाया। शायद यही कि लक ी ही स ी हों तो उसका क्या कसूर। 'तू खुद ही तो लक ी खरीदता है, देखते वक्त दीदे फूट गये थे क्या?' - मारिया ने अपना झोंटा कान के पीछे खोंस लिया, यह तो नित्य के नाटक की पुनरावृत्ति थी।

'अब आप तो जैसे जानती ही नहीं' - सैम्युअल ने चिमटे से आग कुरेदी - 'हर चीज़ पर तो ब ी मेमसा'ब बोलती हैं कि सस्ते दाम वाली लाना, अब बारा आने में आजकल सूखी लक ी कहाँ से आयेगी। बोतल-भर किरासन का तेल तक तो आता नहीं, ऊपर से डाँटने को हर कोई' -

मारिया ने एक विवश क्रोध से होंठ काट लिये। कब्र में टाँग लटकाये बैठी है बुढ़िया, पर पैसे-पैसे को दाँत से पक ेगी . . . सैम्युअल भी क्या करे। ये तो बुढ़ापे की मजबूरी है कि टिक गया वह भी, वर्ना . . .

'ठीक है, हो जाये तो बाथरूम में रख देना और फिर ब्रेकफास्ट लगा देना, समझे?' - अपने रूआब के चीथ े समेटती मारी सीढ़ियों को मु  गई - 'देखना अण्डा मत जला डालना फिर से।'

'मु गी तो सब कु क हैं, अण्डा नहीं है घर मे - 'सैम्युअल निर्विकार भाव से आलू छीलने लगा।

'तो काट कर पका डाल कमबख़्तों को' - मारी हाउसकोट का कॉलर कसती हुई सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। . . . हँह सभी कुछ एक से बढ़ कर एक। . . . मुर्गियाँ भी हैं तो कमबख़्त गंदगी फैलाने के अलावा किसी काम की नहीं। जब देखो तक कु क ! . . . हँह कोई घर है यह भी . . .

. . . कमरे में सोनिया अपनी सींक-सलाई देह को तो ती-मरो ती जम्हाई ले रही थी - 'सैम्युअल कहाँ मर गया मारी? आज चाय ही नहीं लाया सुबह।'

लाया कैसे नहीं, पलंग के नीचे तो प ी है प्याली।'

सोनिया ने झुक कर देखा और मूर्खों की तरह हँसने लगी - 'अब मुझे क्या पता ! आज दूसरी तरफ रख गया ! मैं तो दाहिनी तरफ ही झाँक देखती हूँ।'

'हँह' मारी खि की के पास ख ी, बरसात देख रही थी . . . एकदम घो ी लगती है सोनिया हँसते हुए . . . बेचारी को शायद पता नहीं कि वह कितनी अधे  लगने लगी है। इतरायेगी ऐसे, जैसे कल की छोकरी हो। मारिया ने चश्मे की कमानी ठीक की।

'आज सुबह-सुबह ममा ब ा चीख रही थी, क्या हुआ? फिर गैस बढ़ गई क्या?'

'होगा क्या' - मारी खुली खि की का पल्ला बंद करती, बाथरूम में घुस गई . . . हँह टूथपेस्ट भी खत्म होने पर आ गया है ! अब अगले महीने से पहले तो बुढ़िया नई ट्यूब मँगवाने से रही। उसने थो ा-सा पेस्ट ब्रश पर लगा लिया और एक हिंस्त्र झटके से दाँतों पर रग  डाला - 'रात बुढ्ढी ने मना करते-करते भी खूब चावल खा लिये। फिर दो टुक े चॉकलेट के चाट गई, अब कलप रही है। ज़ुबान पर तो बस है नहीं, फिर डॉक्टरों को कोसती हैं - '

'डॉक्टर था तो बस मेरा डैनियल' - सोनिया ने ममा की पोपली बोली की नकल की - 'आजकल के नेटिव डॉक्टर तो, बस' - दोनों बहनें हँसने लगीं। मारिया ने तौलिये से मुँह पोंछा - 'एकदम भीगा तौलिया है। बुढ़िया से इतना नहीं होता कि नये मँगा ले - '

सोनिया, जो अनमनी-सी खि की को ताक रही थी, अचानक पलटी - 'देख, मेरे वाले को इस्तेमाल मत करना। परसों ही डी.सी.एम. से लाई हूँ' - 'कौन कर रहा है तेरे तौलिये का इस्तेमाल' - मारिया ने अपना तौलिया स्टैन्ड पर टाँग दिया और बाथरूम का दरवाजा भि ा दिया। कुछ देर दोनों, अपरिचितों की तरह आमने-सामने बैठी एक-दूसरे के परे देखती रहीं। मनहूस चुप्पी को तो ती बरसात लगातार गिर रही थी . . . . तर -तर । बंद खि की के शीशों पर पानी की

बूँदें एक चमकीली व्यग्रता से टेढ़ी-मेढ़ी होकर रेंग रही थीं। मारी ने चश्मा उतार कर, यत्न से पोंछा और फिर चढ़ा लिया। कुछ देर वह यूँ ही पैर के अँगूठे से अदृश्य लकीरें खींचती रही। फिर एक सहमी-सी कनखी से उसने सोनिया को ताका - 'सोनिया !'

'हूँ?' सोनिया माथे पर सलवट डाले, कुछ सोच-सी रही थी - 'तेरे पास चार रूपये होंगे क्या? ...मेरी चप्पलें एकदम - '

'नहीं हैं' - सोनिया उसकी ओर बगैर देखे ही चट-से उठ गई। मारिया ने रश्क़-भरी नज़र से उसकी अल्मारी पर झूलते ताले को देखा। दस-पन्द्रह तो जरूर होंगे कमबख़्त के पास ! पर देगी क्यों? आखिर है न ममा का खून। सारा का सारा सेंत कर सात तालों में छुपाये रखेगी कि कोई माँग न ले ..आवाज़ में हल्की दीनता भर कर, उसने फिर एक बार और सहमी चेष्टा की - 'बस, पाँच-छः दिन का सवाल है। फिर मैं ममा से माँगकर वापस दे दूँगी' ...सोनिया ने दरवाज़े को लापरवाही से धक्का दिया - 'आज तक कभी ममा ने चुकाये हैं जो अब देगी?' उसकी पतली आवाज़ और तीखी हो गई - 'मर-खपकर अस्सी रूपया स्कूल से कमाती हूँ, उसके भी सौ हिस्सेदार हो जाते हैं। अपने धोबी का हिसाब मैं अलग से करूँ। बस का किराया अपने पैसों से दूँ। धेले का क्रिसमस प्रेजेंट तो मिलना दूर, उस पर उधार माँगने को सब तैयार। ममा से क्यूँ नहीं कहती सीधे? मेरी मारी, मेरी मारिया तो सारे वक्त कहती रहती है बुढ़िया ! हँह ...कोई घर है यह भी?'

दरवाजा भ ाक् से बंद हो गया। एक शिथिलता से मारिया सलवट-भरे बिस्तरे पर अधलेटी हो गई। सोनिया का भि  के छत्ते-जैसा मिज़ाज जानते हुए भी उससे माँगने गई ही क्यों? इस घर में सबकी दुखती रग है, पैसा ! घर की जिम्मेदारी न होती तो वह भी ढूँढ लेती कोई नौकरी। कम से कम सोनिया के हाथों ऐसे बेइज्जती तो नहीं ...पर देता भी कौन उसे नौकरी? माइनस ग्यारह का मोटा चश्मा, मोटी फूह  देह। दो-चार बार कोशिश भी की तो लोग शक्ल देख कर ही बिदक गये.. ..एक रश्क़-भरी साँस लेकर उसने अल्गनी पर टँगे सोनिया के बित्ते भर के ब्लाउज को ताका। कमबख़्त कितना ही खा-पी ले, पर मज़ाल है कि तोला-भर भी माँस चढ़ जाये ...एक वह है दिन-पर-दिन और भी मोटी और भोंडी होती जा रही है ...मनहूसियत में जो कसर बची थी, उसे पूरा करने को उसका कमबख़्त चश्मा ...

भ ाक्। ...बाथरूम का दरवाज़ा फिर खुला। सोनिया बाल बिखराये, दहकती ख ी थी - 'मारी, तूने फिर मेरा ओडीकोलोन लगाया?' ...गुस्से से उसके होंठों के ऊपर भीगे रोयें काँप रहे थे। कोटरग्रस्त आँखें और भी मिचमिची हो आईं थीं। कहीं एक तृप्ति की भावना से मारी ने नोट किया कि गुस्से में सोनिया खासी बदसूरत लगती है।

'बोलती क्यूँ नहीं?' सोनिया आग्नेय आँखों से उसे घूर रही थी ...मारी चुप रही ...एक-दो बूँद हो तो ...'सौ बार कहा है, कि अपने शौक अपने तक ही रखा कर ! या तो पैसा माँग अपनी ममा से और अपने लिए अलग से खरीद ला। मेरी कमाई से खरीदी चीज़ों का शौक करने की जरूरत नहीं ! समझीं !' भ ाक् से दरवाजा उसी अप्रत्याशितता से बंद हो गया, जैसे खुला था ...मारी कुछ देर स्तब्ध बैठी रही। अब आज से 'ओडीकोलोन' भी ताले में बंद हो जायेगा ! कमीनी नहीं तो। हर चीज़ में ममा को उलाहना देती है, जैसे उसे पता ही नहीं कि ममा मारिया की चापलूसी सिर्फ़ इसलिए करती है कि अब अंधी खुद घर नहीं सम्हाल सकती ...घर का भी क्या है? काम की जिम्मेदारी सब उसकी और पैसा-रूपया सब ममा के पास ! धेले-धेले का हिसाब रखवा लेती है बुड्ढी, पर रूमाल के लिए भी आठ आने माँगो तो बिदक जायेगी ! हँह ...मेरी मारिया। खूब समझती है वह ममा के ला  का राज ! पर करे क्या? कहाँ जा सकती है वह भी? अब तो वह है और गल-गलकर बैठता यह घर ...अधटूटी चप्पल घसीटती मारिया ममा के कमरे में घुस गई ...

जिंघम की रंग-उ ी नीली फ्राक में लिपटी ममा किसी प्रागैतिहासिक फासिल की तरह आरामकुर्सी पर उकड़ू बैठी थी ...दृष्टिहीन सलेटी आँखें दरवाजे की ओर मु ीं - 'कौन? सैम्युअल है क्या? ...आज तो तूने ब्रेकफास्ट ही नहीं - ' 'नहीं मैं हूँ ममा !' - मारी खि की के पास रखी दूसरी कुर्सी पर बैठ गई - 'कैसी तबियत है तेरी अब? दवा ले ली थी क्या?'

'क्या दवा-दारू करूँ बेटा, अब तो बस दिन ही कट रहे हैं ...' ममा की सूखी झुर्रीदार ऊँगलियाँ मक ों की तरह अपनी गर्दन सहला रहीं थीं - 'न बदन में ताकत है, न आँखों में रोशनी.. ..या मेरे ईसू !'

...एक क्षण को मारिया के भीतर दया-सा कुछ सिहर गया - 'डॉक्टर लाल को फोन करूँ

क्या? शायद दवा बदलने से - ' 'अरे दवा-हवा क्या, अब तो ऐसे ही ठेलना है बेटा - ' ममा ने पलकें झपकाईं - 'ऊपर से और एक लम्बा बिल थमा जायेगा कमबख़्त ! मैं इन लालची नेटिव डॉक्टरों को खूब जानती हूँ !....यहाँ पैसे-पैसे को सोच-कर खर्च करना प ता है कि किसी तरह महीना कट जाये....दवा का बिल कौन....'

मारिया ने गले के पास घृणा का ठण्डा-हरा स्वाद महसूस किया- 'तेरा ब्रेकफास्ट मँगा दूँ ममा?'

बूढ़ी की अंधी आँखों में एक लोलुप चमक गहराई - 'पुकारना तो ज़रा कमबख़्त को बेटा, मेरी तो सुनता ही नहीं....मैं तो कहती हूँ मेरी मारिया न हो तो....मारिया ने क्रूरता से ठोकर मारकर दरवाज़ा खोल दिया और बाहर आ गई....हँह् यह घर। - 'अरे सैम्युअल अभी तक तेरा ब्रेकफास्ट नहीं बना क्या?'

बाहर बारिश यकायक और तेज हो गई....तूफान की साँय-साँय में पूरा घर हिल-सा रहा था - 'सैम्युअल !' वह फिर चीखी।

'सुन लिया जी, आ रहा हूँ अभी !' झुँझलाई आवाज़ सीढ़ियों के मो पर से ही आई। सैम्युअल ट्रे में ममा का नाश्ता लिये आ ही रहा था - 'अब लक यों ही ऐसी सीली हुई हैं तो मैं क्या करूँ?' मारिया चुपचाप कमरे में फिर घुस गई - 'ले आ गया तेरा ब्रेकफास्ट भी - यहाँ रख दो सैम्युअल', उसने इशारे से तिपाई दिखा दी।

सैम्युअल चुपचाप ट्रे रख कर बाहर निकल गया। पुतली-सी बैठी ममा यकायक चैतन्य हो आई - 'टोस्ट गरम तो हैं मारी?' मारी निःशब्द टोस्ट पर मक्खन लगाती रही। बस, खाने की गंध मिली नहीं कि बुड्ढी की पाँचों इन्द्रिया जाग प ती हैं ! ममा जवाब न पाकर भी चहके जा रही थी - 'सैकरीन की तीन गोलियाँ डालना मेरी चाय में ! एक-दो गोली से तो मिठास ही नहीं आती....' मारिया ने टोस्ट बढ़ा दिया - 'ले।'

एक घृणास्पद उत्सुकता से झुर्रीदार हाथ प्लेट तलाशने लगे। टोस्ट पर हाथ प ते ही एक बेताबी से ममा ने दबोच लिया और पोपले मसूढ़े परम तृप्ति से उसे चबाने लगे - 'मक्खन कम लगाया है मारी बेटा, जरा और दे देना।'

'ममा डॉक्टर ने मना किया है।' ममा का निचला होंठ रूठे बच्चों की तरह फूल आया - 'तो कल से खाना भी बंद कर देना कि वो भी नुकसान करेगा।....अपने लिये तो कोई कमी नहीं करोगे तुम लोग, बस मेरे ही लिये सब चीज़ की मनाही है। मैं सब समझती नहीं क्या?' उसकी अंधी ही आँखों से आँसू टपकने लगे - 'पैसे देकर भी खाना मयस्सर नहीं होता, या मेरे ईसू ! कैसी मज़बूरी है ! अरे मेरे ही पैसों से सब लोग खाते हो और मुझी पर सारी रोक-टोक भी लगाते हो ! इतना ही पैसा किसी होटल को देती तो - ' ममा ने फ्राक उठाकर, नाक सु क ली।

एक क्षण को मारिया का मन हुआ कि बुढ़िया की गर्दन के पीछे की झुर्रीदार खाल चुटकी में पक  कर उसे ऊपर उठा ले, जैसे कुत्ते के पिल्ले को उठाया जाता है और फिर झकझोर-झकझोर कर मक्खन की तश्तरी में उसकी नाक रग  डाले - 'जा किसी होटल में और दो आउंस की टिकिया को हफ्ते-भर चला ले !' अपने ही गुस्से के उफान से पस्त वह बाहर निकल आई - 'सैम्युअल ! पानी गरम हो गया हो तो रख देना बाथरूम में।'

सैम्युअल ने पता नहीं सुना भी या नहीं....मारिया चुपचाप बाहर ताकने लगी, बरसात निढाल होकर थम गई थी। बस, एक हल्की बौछार-सी प  रही थी। झीने प ते बादलों के पीछे से कहीं-कहीं आसमान की सलेटी झाँई भी नज़र आने लगी थी।....चले, गीला तौलिया तो बाहर डाल दे कम से कम....। थके पैरों मारी कमरे में घुस गई। सोनिया ने हाथ-मुँह धोकर कप  बदल लिये थे और गुनगुनाती हुई बाल ब्रश कर रही थी। मूड शायद कुछ बेहतर था। मारिया ने हल्के-से खँखारा - 'कहीं बाहर जा रही है क्या?'

'कहाँ जाऊँगी ऐसे मौसम में -' सोनिया ने तुनक कर कंघा रख दिया और उँगली पर टूटे बाल लपेटने लगी - 'एक ढंग का छाता तक तो पास मे है नहीं, कौन बैठा है मेरा जिसके पास जाऊँगी? थूः' आदतन उसने बालों के गुच्छे पर थूका और खि की से बाहर फेंक दिया। 'तो जा फिर जहन्नुम में ही -' मारिया ने मन ही मन दाँत पीस लिये....

सोनिया बाहर चली गई तो चादर बिछाते-बिछाते उसने सिर को झटका - हँह्, बेकार ही वह भी इन लोगों को लेकर पागल होती है....। चलें, नहा लें।....अल्मारी से कप  निकालती, वह चौंक प ी - स ाक् ! स ाक् - बाहर से ऐसी आवाज़ आ रही थी, जैसे कोई बेरहमी से पे ों को

झकझोर रहा हो। उसने दौ  कर खि की खोल दी और झाँकने लगी।....अंदाज़ ठीक ही था, फिर वही स्कूली छोकरे लग्गी लेकर फल झ ा रहे थे - 'सैम्युअल !' उसकी तीखी आवाज़ को े-सी लपलपाई - 'जरा देखना इन कमबख़्तों को !' बच्चों ने अचकचा कर ऊपर ताका। खि की पर मारिया का विराट आकार काले हाउसकोट में लिपटा टँगा था....

रसोई से सैम्युअल लक ी लेकर काँखता हुआ लपका - 'नाश हो इन छोकरों का ! इसू कसम, एक-एक की कमर नहीं तो ी तो'....मारिया उत्तेजना से पंजों पर झूल रही थी, - 'पक लो बदमाशों को, जाने न पायें' बच्चों के हुजूम ने अपनी लग्गी वहीं पटकी और पल भर में पूरा झुण्ड खरगोशों की तरह बिला गया....पोपले मुँह से चिंघा ता सैम्युअल पे ों के व्यर्थ चक्कर काट रहा था - 'भाग गये बदमाश सब के सब ! न पढ़ाई, न लिखाई, बस चोरी-चमारी में अव्वल ! आयें अब आगे कभी !' लक ी को झुलाता वह वापस रसोई में घुस गया। एक शांति की साँस लेकर मारिया ने हाउसकोट की पेटी कस ली। वह तो उसने देख लिया वर्ना एक भी फल नहीं रहने देते ये छोकरे -

टप ! - वह चौंक कर पीछे हटी, एक कंक ी ठीक उसी के पैरों के पास आकर गिरी - 'चिमगाद  ! चिमगाद  !'....छोकरों का झुण्ड अब स क की खुली सुरक्षा में घिरा ख ा था। उनके अगुआ ने अब बाँहें फटफटाते चिमगाद  का आकार बनाया - 'वो देखो, काली चिमगाद  !'....हो-हो-हो....अपने लीडर की रसिकता से अभिभूत जत्था आगे भागने लगा....देर तक मो  से उनकी पतली बचकानी आवाज़ें कंकरियों की तरह उछल-उछलकर आती रहीं - 'चिमगाद  ! चिमगाद  !'.. मारी ने पाया कि उसके हाथ से कप ों का गट्ठर न जाने कब फ़र्श पर गिर प ा है। खि की बंद कर उसे उठाने को झुकी तो चप्पल का आख़िरी फ़ीता भी त ाक् से टूट गया !....एक बेबसी से उसने टूटी चप्पल को ताका और वहीं फ़र्श पर बैठ गई....चुँधी आँखों से आँसुओं के मोटे-मोटे क़तरे फूले गालों पर ढुलकने लगे। काला हाउसकोट डैनों की तरह उसके इर्द-गिर्द फैला प ा था।....

हवा का एक भटका झोंका आकर खि की को फिर खोल गया। बाहर आसमान बच्चे की पहली रुलाई-सा नंगा और तीखा हो आया था....

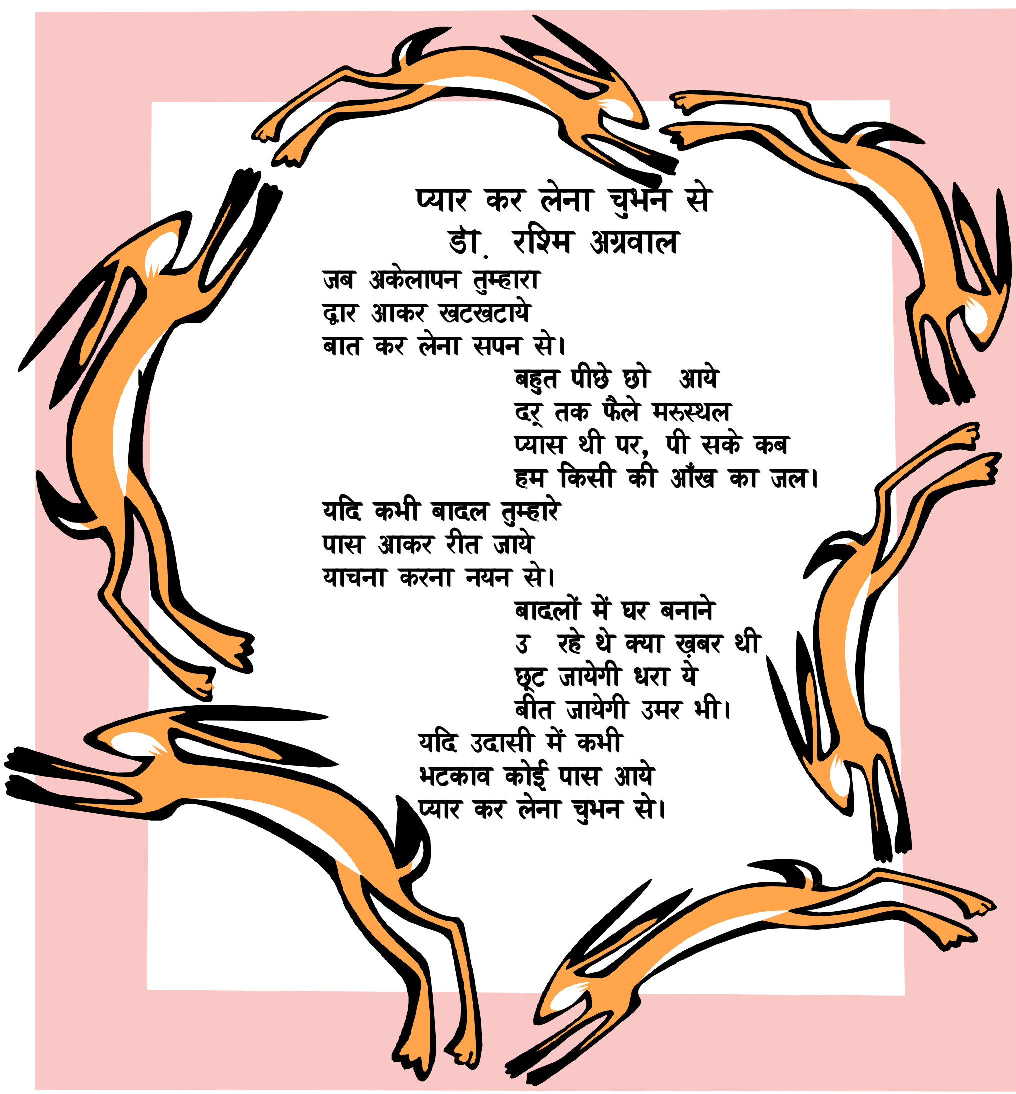

## प्यार कर लेना चुभन से

### डॉ. रश्मि अग्रवाल

जब अकेलापन तुम्हारा
द्वार आकर खटखटाये
बात कर लेना सपन से।

बहुत पीछे छो  आये
दूर तक फैले मरुस्थल
प्यास थी पर, पी सके कब
हम किसी की आँख का जल।

यदि कभी बादल तुम्हारे
पास आकर रीत जाये
याचना करना नयन से।

बादलों में घर बनाने
उ  रहे थे क्या ख़बर थी
छूट जायेगी धरा ये
बीत जायेगी उमर भी।

यदि उदासी में कभी
भटकाव कोई पास आये
प्यार कर लेना चुभन से।

# घर से भागने और लौटने के बीच

**विष्णु प्रभाकर**

सन् १९२४ में मेरी माँ ने मुझे आगे पढ़ने के लिए अपने भाई के पास हिसार भेज दिया था। कैसे-कैसे सपने देखा करता था, मैं गाँव का एक अबोध बालक। हिसार में मैं नानारूप बंदिशों से घिरे गाँव से उठकर आर्य-समाज के मुक्त वातावरण में आ गया। कितना ख़ुश हुआ था तब मैं लेकिन तभी विधाता ने ज़ोर से अट्टहास किया और अगले ही वर्ष १९२५ में प्लेग की महामारी में परिवार में सबसे अधिक कमाने वाले मेरे छोटे चाचा का देहांत हो गया, मानों मेरे सपनों का देहांत हो गया।

किसी तरह मैट्रिक की परीक्षा दी तब मेरे किशोर मन ने सपना देखा था, लाहौर जाकर डी.ए.वी.कॉलेज में पढ़ने का और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने का।

मैं यह भूल गया कि गाँव में मेरा परिवार विपन्न हो चुका था। पिता तो कर्मकांडी थे, अर्जन की विद्या में कोरे। चाचा ख़ूब कमाते थे पर जुए में खो भी देते थे। तीन-चार साल में ही इतना कर्ज़ा चढ़ गया कि हमारा सब कुछ बिक गया। दोनों दुकानें भी। माँ का ज़ेवर भी। किसी तरह घर बच सका, इसलिए कि उसमें दूसरे बाबाओं का हिस्सा भी था लेकिन छोटे भाइयों का क्या हो, कहाँ जाएँ वे?

तब स्वाभाविक था कि सबकी निग़ाह मुझ पर प ती। मैं मैट्रिक का इम्तहान दे चुका था। बाबा ने कहा, 'चिंता मत करो, ब ी बहू अपने भाई से कहकर उसे सरकारी नौकरी दिलवा देगी।' सब बहुत ख़ुश हुए पर मुझ पर तो जैसे गाज गिरी। मैंने कहा, 'मैं तो आगे पढूँगा।'

तब मामाजी ने मुझे समझाया, 'देख बेटे, आगे पढ़ने के सपने मत देख। तेरे माँ-बाप, भाई सब भूखे मर जाएँगे। हमारे दफ्तर में कई नई नियुक्तियाँ होने वाली हैं। मैं ब` साहब से कहकर तुझे एक क्लर्क के पद पर नियुक्त करवा दूँगा, तेरी माँ, तेरे भाई सब तेरे पास आ जाएँगे।'

मैं कुछ नहीं समझ रहा था, नेत्र विस्फारित किये मामाजी की ओर देख भर रहा था। जैसे-जैसे समझता गया वैसे-वैसे दिल टूटता गया लेकिन और कोई रास्ता भी तो नहीं था। उन दिनों मैं डायरी लिखा करता था। उसके हर पन्ने पर लिखा हुआ था, 'बेटर टु डाई, बेटर टु डाई।' बातचीत करते हुए भी बार-बार यही वाक्य मुँह से निकल जाता। एक दिन मामाजी ने सुन लिया। भ क उठे, 'मेरा क्या, मत कर नौकरी, तेरी माँ, तेरे भाई सब मर जाएँगे तब तू कॉलेज चले जाना....।'

लंबी दर्दभरी कहानी है। अंततः मुझे नौकरी करनी प ी। चारों तरफ हर्ष की लहर दौ गई। माँ ने प्यार-भरी चिट्ठी लिखी। मैंने भी यह सोच लिया कि भाग्य में यही लिखा है तो यही हो। समाज की सेवा करने के और भी रास्ते हैं लेकिन मन के तो रूप अनेक हैं, सबको कैसे समझाता? वह बार-बार रो प ता, पूछता, 'कहाँ गया तेरा वह कॉलेज का मुक्त वातावरण, कहाँ गया गाँधी जी का आनेवाला स्वतंत्रता आंदोलन, कहाँ गये ये सब....?'

मैं बार-बार विचलित हो जाता, बार-बार चीख प ता लेकिन अंततः हुआ वही जो मेरा परिवार चाहता था। कुछ महीने बाद मामाजी को अपने नये मकान में चले जाना था और मुझे माँ और भाइयों को लाकर नया घर बसाना था....। लेकिन तभी वह अघटित घट गया। मेरा मन सहसा चीख उठा, 'बचपन से तू गाँधीजी का सपना देखता रहा है और अब जब उनके साथ चलने का अवसर आया तो उसी सरकार की नौकरी करने लगा।'

फिर क्या था भयंकर तूफ़ान उठने लगे छाती के भीतर और अंततः मैंने निश्चय किया, 'मैं नौकरी नहीं करूँगा। क्रांतिकारियों के साथ मिल जाऊँगा।'

और एक दिन मैं इतना व्यथित हुआ कि सरकारी नौकरी, माँ और मामाजी के प्यार की अवहेलना करके घर से भाग ख ा हुआ। कोई सुनियोजित योजना मेरे पास नहीं थी। कहाँ जाना है यह भी मैं नहीं जानता था इसलिए जब रात को दिल्ली पहुँचा तो प्रश्न हुआ कि कहाँ जाऊँ? वहाँ बुआ का घर था। ब` भाई वहीं रहते थे। पर उनके पास जाना तो अपने को संकट में डालना था....। यही सोचता मैं स्टेशन से बाहर आया और बाग-दीवार की ओर निकलकर कप` की मार्केट के पास वाले बरामदे में पहुँच गया।

बरामदे में अनेक मज़दूर और भिखारी सोने का उपक्रम कर रहे थे। उन्हीं के बीच में बे-सरो-सामान मैं भी लेट गया। सब कुछ यंत्रवत हो रहा था, अगले क्षण जो होना है हो. . . .। कभी-कभी पूरी शक्ति बटोरकर मैं सोचने का अभिनय करता तब कहीं-का-कहीं पहुँच जाता। तभी अचानक पुलिस के दल ने आक्रमण कर दिया। लोग उठ-उठकर इधर-उधर भागने लगे। एक ह कंप-सा मच गया। शायद झपकी लग गई थी। शोर से घबराकर मैं आँखें मलता हुआ उठा कि एक डंडा कमर पर प ा। पुलिसवाला कह रहा था, 'यह तो क्रांतिकारी लगता है. . . .।'

वाक्य पूरा होता उससे पहले मैं उसी मार्ग पर भाग चला जिससे वहाँ पहुँचा था। स्टेशन पर आकर सामने जो ट्रेन ख ी थी उसी पर चढ़ गया। वह जैसे मेरी ही राह देख रही थी। उसने सीटी दी और चल प ी। उन दिनों गा ियों में भी  नहीं होती थी। मैं निढ़ाल-सा, बेहोश-सा एक बर्थ पर लेट गया और सवेरे जब आँख खुली तो पाया कि मैं वहीं पहुँच गया हूँ जहाँ से चला था। यह सब आकस्मिक था या विधि का सुनियोजित षड्यंत्र। आज भी अनुभव कर सकता हूँ कि मेरे अंतर को भयमिश्रित पश्चाताप ने आवृत्त कर लिया था। जो कुछ हुआ उसके लिए मेरे मामा तो दोषी नहीं थे। उन्होंने तो सदा मेरा भला चाहा। मेरे इस तरह भाग जाने से उन पर क्या बीतेगी, क्या मुँह दिखाएँगे वे फार्म के प्रशासक को, मेरी माँ को. . . .। वे सचमुच मुझे ढूँढने निकल चुके थे। उधर छोटा-सा सारा नगर मेरी कहानी जान चुका था। मेरे ट्रेन से उतरते ही झि कियों की जो बौछार हुई वह मुझे बहुत दिनों तक त्रस्त करती रही।

घर पहुँचना एक अनुभव था। किसी ने एक शब्द नहीं कहा, बस उनकी विचित्र दृष्टि मुझे परेशान करती रही, वह दृष्टि जिसमें करुणा नहीं केवल भर्त्सना थी। वह भी मौन, चीर गई मेरे अंतरतम को। एक अपराध-बोध मुझ पर धिक्कार की वर्षा करने लगा। काश ! कोई मुझ पर चीखता-चिल्लाता, कहीं कुछ नहीं हुआ। बस शून्य मे डूबे-डूबे ही मैंने दिल्ली मामाजी को तार दिया। दफ़्तर जाकर फार्म के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर स्मिथ से मिला। उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और इतना ही कहा, 'ऐसी गलती फिर मत करना, जाओ काम करो।' प्रकट में यह बात एक बुलबुले की तरह उभरी और फिर वैसी ही फूट गई लेकिन मेरे अंतर की पी ा को नापने का यंत्र तो किसी के पास नहीं था। मेरे अंतर में एक और अव्यक्त विचारधारा थी जो उठ रही थी, जिससे उस समय मैं स्वयं अपरिचित था, 'मेरी माँ का क्या होगा, मेरे भाइयों का क्या होगा?'

यह विचार मुझे बहुत कुछ करने को कह रहा था जो मैंने किया अनजाने-अनचाहे।

इस द्वंद्व और इस व्यथा के कारण मेरा स्वास्थ्य जो भंग हुआ वह फिर लौटकर नहीं आया। मेरा दिशाहीन सफ़र एक मो  लेते-लेते रह गया।

## रात के सन्नाटे में

### डॉ. नीरजा माधव

**किसी रात के सन्नाटे में**
**उग आए**
**उफनती नदी के सीने पर**
**पियराई दूबों वाली पगडण्डी**
**टहनियों पर**
**झूल जाए आकाश-गंगा**
**टँक जाएँ ओस के मोती**
**दूब के नुकीले भालों पर**
**एक राह बनाती हूँ कब से**
**निरापद**
**गैरिक वसन उस चाँद के लिए**
**उतर आयेगा जो चुपचाप**
**किसी रात के सन्नाटे में**

# दर्द

**मधुप मोहता**

ओढ़न उतारती हैं लकीरें,
और लिपट जाती हैं सलेटी परछाइयों में,
एक धुन, झिझकती है, फिर
उसी लय में ध कती है।

कहीं,
बैठे हुए हम,
एक तूफ़ान की ख़ामोशी
तुम्हारे ओठों पर ठहर जाती है
तुम्हारे हाथ मेरे हाथ में
सिमटे।
तुम खोलती हो आँखें और
बिखर जाती हैं परछाइयाँ
अनगिनत रंगों का एक गुबार
बरसता रहता है
चेतना की सतह पर, लगातार।

एक
ख़ामोशी
दर्द के मुहावरों को
उन्मत्त निबंधों में
समाधि देती रहती है।

# सरसता से समरसता तक

डा. संतोष गोयल

'अक्षर' वो है जो 'क्षर' नहीं होता। 'क्षर' न होने वाले अक्षर से बनता है 'शब्द'। शब्द ब्रह्म है, ब्रह्मांड है, शक्ति है, शब्द ही प्रणव ओंकार है और शब्द ही विलास है। वाग् विलास करते जाने कितनों के सम्पर्क में हम आये होंगे। शब्द की शक्ति देखनी हो तो एक शब्द में भरे अनेक अर्थों पर गौर करें। आज तो उनमें समय और परिस्थिति के अनुसार नए अर्थ भर दिए गए हैं। 'झूठ' को 'बहाना', 'रिश्वतखोरी' को 'दस्तूरी', 'बेईमानी' को 'कार्य पद्धति', 'गलती' को 'जरूरत' में परिवर्तित करने वाले इस युग में पुराने शब्दों में नए अर्थ भी भरे जा रहे हैं तथा नवीन शब्द भी गढ़े जा रहे हैं। इसी से शब्द की महत्ता स्पष्ट है। मानव भी 'शब्द' के कारण विशिष्ट है। जब तक 'शब्द' का अस्तित्व रहेगा, साहित्य की रचना होती रहेगी। साहित्य ही तो मानव की सम्वेदनाओं के भीतर से उगती वो लतर है, जिसके सैक ों शाखाओं-उपशाखाओं-से हाथ लहराते रहते हैं। जब तक मानव में सम्वेदना जीवित है, 'शब्द' की सत्ता बरकरार है, हम लिखने को विवश हैं। जब तक हम लिखते रहेंगे, तब तक साहित्यिक पत्रिकाओं की उपयोगिता बनी रहेगी।

संसार की स्थिति को देख कर लगता है कि आज भी हम आदिम युग में रह रहे हैं। पहले छोटे-छोटे कबीलों में रहते थे और शक्ति-वृद्धि के लिए परस्पर ल ते थे। आज पूरा विश्व एक कबीला बन गया है तो हम शक्ति-प्रदर्शन के लिए ल ते हैं। तो क्या हमारे मानवीय भाव मृत हो गए हैं? क्या हम संवेदनहीन हो गए हैं? इतने युगों पश्चात् हम सभ्य होने की इस ल ाई में हार गए हैं। अपूर्व तकनीकी और वैज्ञानिक, औद्योगिक उन्नति के बावज़ूद भी हम तनाव-ग्रस्त हैं। इतने सारे सुख-सुविधा के साधनों के बीच भी बेचैन हैं। ढेर-सा बहुत कुछ है, जो हमारे पास है, पर मन के स्तर पर हम संकुचित होते जा रहे हैं। 'स्व' से 'पर' तक की उदात्तीकरण की राह में हम कहाँ हैं? यहीं साहित्य की अनिवार्यता सिद्ध है क्योंकि शुष्क व बीह  रास्तों पर समरसता तथा सरसता तो साहित्य ही ला पाता है।

## ग़ज़ल

शैलजा नरहरि

हौसला भी मिला हमसफ़र भी मिला  
क्या करें हर सफ़र मुख़्तसर भी मिला।

थी पहा ी औ रस्ता था कुछ दूर तक  
जिस में चिट्ठी न थी डाकघर मिला।

आइनों की दुकानें थीं चारों तरफ़  
सच इसी से यहाँ दर-ब-दर भी मिला।

खोल दी थीं हवाओं ने सब खि कियाँ  
आँधी तूफ़ान को आज घर भी मिला।

बात कर आज मुझसे मुख़ातिब तो हो  
अब तो हो जा मिरा औ' नज़र भी मिला।

# एकता के क्षेत्र में कामयाबी

**नीरज व्यास**

आज पच्चीस जनवरी है। इसका सीधा-सा अर्थ है कि कल छब्बीस जनवरी होगी। देश का राष्ट्रीय त्यौहार। इस देश में स्वतंत्रता से लेकर गणतंत्र दिवस अर्थात् पन्द्रह अगस्त से लेकर छब्बीस जनवरी तक प्रमुख रूप से दो राष्ट्रीय त्यौहार आते हैं। वैसे इस राष्ट्र को त्यौहार वाला राष्ट्र भी कहा जा सकता है। त्यौहारों पर सरकारी छुट्टी मिलती है। यदि यह त्यौहार न होते तो हमें ज्यादा काम करना होता, जिससे हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा असर प ता।

कल हमारे आफिस के ब` बाबू कह रहे थे कि इस बार छब्बीस जनवरी रविवार को आ गयी। एक छुट्टी खराब कर दी इसने। अरे ये सोमवार को आती तो तीन अवकाश घसीट कर अपने गाँव से एक ट्रक गेहूँ लाकर शहर में बेच देता, चार पैसे कमा लेता, पर होनी को कौन टाल सकता है। हमने ब` बाबू को समझाया, भाई, यह राष्ट्रीय त्यौहार देश प्रेम दिखाने का त्यौहार है, साल में कम से कम दो दिन तो देश के प्रति कुछ प्रेम दिखाओ, यहाँ भी धंधे की सोच रहे हो।

ब` बाबू का कहना है, वे खानदानी देश प्रेमी हैं। उनके पिता गाँधी जी के कंधे से कंधा मिलाकर आज़ादी के आंदोलन में कूद प` थे। अगर वे न होते तो गाँधी जी की हिम्मत टूट जाती, और अगर हिम्मत टूटती तो हम आज़ाद न होते, और पन्द्रह अगस्त न आता तो छब्बीस जनवरी कैसे आती। गाँधी जी तो न रहे पर पिता जी आज भी स्वतंत्रता सेनानी वाली पेंशन लेकर आज भी अपना देश प्रेम बनाये हुए हैं। और यह क्लर्की भी हमें पिता जी के देश प्रेम की बदौलत हासिल हुई है। हमारे पिता जी तो वास्तव में ल` थे वरना इस देश में कुछ तो ऐसे नकली देश प्रेमी घूम रहे हैं जिन्होंने न तो कभी अँग्रेजों के जेल की शक्ल देखी, न कोई लाठी खायी। हमारे पिता जी की पीठ पर तो आज भी अँग्रेज पुलिस के डंडों के निशान सलामत हैं। पाँच महीने जेल भी काट ली इस देश के लिए।

हमारे देश में रहने वाला हर आदमी, देश पर एक न एक एहसान जरूर कर रहा है। और देश भी बेचारा सीधा-सादा है कि दबा जा रहा है देशवासियों के एहसान तले। आदमी अपनी चिन्ता करे या देश की? अब सारा काम-धंधा छो  कर देश प्रेम तो दिखाया नहीं जा सकता। नेतागण अगर देश सेवा करेंगे तो उनके बाल-बच्चों का क्या होगा। उनके भविष्य की चिन्ता कौन करेगा।

उनकी आने वाली आठ-दस पीढ़ियाँ क्या खायेंगी। पहले कुछ खा, कमा और जो  लिया जाये फिर देश को देखेंगे। और जनता बेचारी अपनी दो जून रोटी की व्यवस्था में इतनी मग्न है कि उसे देश का ध्यान नहीं, कहाँ जा रहा है यह देश और इसे कौन किधर हाँक लिये जा रहा है। हमें आज़ादी मिली, हम गणतंत्र दिवस भी मना रहे हैं, यही तो हमारी राष्ट्रीय भावना और देश प्रेम है। इससे ज्यादा बचा भी क्या सकते हैं।

छब्बीस जनवरी की सुबह-सुबह नेता जी की आवाज़ हर गली-मोहल्ले से गूँजेगी, 'ऐ मेरे वतन के लोगों, जरा आँख में भर लो पानी।' यह भी क्या बात है सुबह-सुबह आँख मे पानी भर लो। अरे, पहले कॉर्पोरेशन के नल में इतना तो पानी हो जिससे मटकी भर जाये, फिर दाल-रोटी के लिए जेब में दो-चार पैसे भरने की सोचेंगे, फिर अपना आधा या पूरा पेट भरेंगे और फिर यदि समय मिला तो नेता जी की बात पर गौर कर देश प्रेम की और अपने शहीदों की याद कर अपनी आँख में दो-चार बूँद पानी भरने की सोचेंगे।

सारी समस्या तो पानी की है, हमारी आँख का पानी न जाने कहाँ गया। अगर आँख में पानी होता, तो देश में कोई समस्या ही न थी। न पानी के लिए दो राज्यों में मारकाट, न नेताओं द्वारा शोषण, और न जनता का दोहन, न आतंकवाद होता और न चोरी डकैती और हत्याएँ होतीं। मर गया है आँख का पानी। सूख गया है आँख का पानी। जब आदमी अपनी करतूत से 'पानी-पानी' नहीं होता, तो आँख में पानी कहाँ से होगा?

कल छब्बीस जनवरी की सुबह होगी। गली मोहल्ले और चौराहों में झंडा वंदन के लिए नेता लोग 'बुक' हैं। पुराने भाषणों को नया रूप देकर फिर से पढ़ दिया जायेगा। जवाहरलाल, गाँधी,

सुभाष, भगतसिंह आदि के साथ एकाध नया नाम और फिट करा दिया जायेगा। राष्ट्रीय एकात्मता, भाईचारा, साम्प्रदायिकता आदि दो-चार शब्दों को अपने भाषणों में कहीं न कहीं ज़रूर स्थान दिया जायेगा। बस नेता जी खुश, भाषण जम गया, भी  भी ढंग की थी, इस वार्ड में अपने चाहने वाले हैं, टिकट का ज़ुगा  जम गया तो कुर्सी पक्की। दूसरी तरफ जनता भी खुश है नेता जी से निकट संपर्क हो गया, कभी न कभी ज़रूर काम आएँगे।

राष्ट्र का झंडा वंदन लाल किले पर होगा। प्रगति की झाँकियाँ निकलेंगी जिसे देख कर हम समझ सकते हैं कि हमने देश में कितनी प्रगति कर ली। कितने प्रेम और सद्‌भावनापूर्ण हम इस भूमि पर रह रहे हैं। हमारे उद्योग किस शान से चल रहे हैं। हमारा हर गाँव आदर्श गाँव है, जहाँ फसल लहलहा रही है और किसान अपनी बीबी के साथ-साथ हाथ में हँसिया लिये किस प्रकार मुस्कुराता रहता है। सब ओर खुशहाल भारत है। देश की सभ्यता संस्कृति आज भी सुरक्षित है। यह बात हमें पूरे हिन्दुस्तान में नज़र नहीं आयी पर झाँकियों में ज़रूर नज़र आ जायेगी। यह हमारा स्वतंत्रता दिन है और हम स्वतंत्रदीन हैं।

हमारा देश महान है इसमें दो राय नहीं है पर देशवासी महान हैं या नहीं, इस बारे में अभी भी मैं असमंजस की स्थिति में हूँ। यह भी हो सकता है कि देशवासी भी वास्तव में महान हों और मुझे आज तक इस बात की जानकारी न हो। अगर ऐसा हो तो देशवासी होने के नाते मैं भी महान हो गया। भगवान करे कि देश के लोगों में सद्‌बुद्धि आये वरना जब तक यह धरती रहेगी, 'हम होंगे कामयाब' गाते रहेंगे और कामयाबी आगे-आगे भागती रहेगी, और वह दिन कभी न आयेगा। हम कई जगह कामयाब हैं। एकता के क्षेत्र में कामयाबी हाथ लगने की है, जब मन में विश्वास हो तो क्या नहीं होता। पर राजनीति ही कामयाबी की सबसे ब ी बाधा है। राजनीति ही कामयाब न हो तो एकता कैसे कामयाब हो जायेगी।

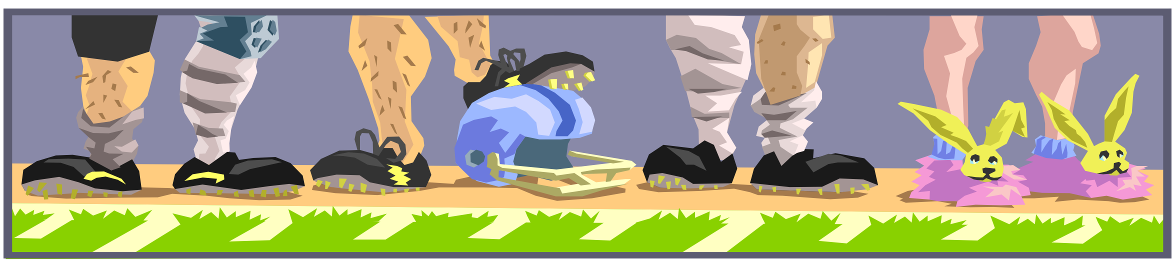

## चाल उनकी बदलती रही

### महेन्द्र नाथ नरहरि

चाल उनकी बदलती रही,  
ज़िन्दगी हाथ मलती रही।

हम तबाही में रहते रहे,  
बात वादों की चलती रही।

आदमी आदमी से ख़फा,  
साँस उसकी निकलती रही।

खुश्क मौसम, है सूखी नदी,  
धूप पे ों को खलती रही।

ख़्वाब करवट बदलते रहे,  
प्यास सीने में पलती रही।

# इस्तानबुल. . . .तुम्हारी याद में

**दीपमाला वर्मा**

सलेटी एअरपोर्ट की रन-वे के स्पर्श-मात्र से ही अजनबी शहर ने बंद शीशे से झाँकतीं मेरी आँखों को अचानक ही नमी की सौगात दे दी। आज बहुत दिनों के बाद घर से बाहर पैर रखने की ललक के एहसास से रोमांचित मेरे मन को, बिन माँगे असंख्य पर मिल गये थे। प्रश्न चौदह वर्षों का नहीं। आस्था उन्हें देखने की थी, उनसे मिलने की थी। चौदह महीने के अंतराल को आगे बढ़कर मिटाने की थी। पानी से घिरे इस्तानबुल शहर स्थित भारतीय कौंसलावास के प्रधान कौंसल जनरल अपने पति प्रवीण के पार्श्व में बैठ, मर्सिडीज़ की भागती रफ़्तार के साथ ताल-मेल मिलाती अपने दिल की ध कनों को काबू में करने की नाकाम कोशिश पर अनायास ही मुस्करा प ी हूँ। धीरे से अपनी हथेली को उनके हाथों के सशक्त बंधन में बाँध जैसे आश्वासन की डोर थाम ली है मैंने। पलट कर खि की के बाहर नये शहर की नई ज़िन्दगी को भरपूर निहारा है मैंने। इस्तानबुल की भव्य इमारतें, भी  से भरी दौ ती स कें, रंग-बिरंगी दुकानों पर व्यस्त लोग, टरकिश संगीत से घिरे व्यस्त बाज़ार, लेकिन सभी पानी से भरे समुद्र के आस-पास। शहर कहीं से भी पानी से अछूता नहीं। पहा ों पर बसे इस ऐतिहासिक शहर से मिल कर अनायास ही अपनी बंद पलकों के पीछे शिमला, कश्मीर और ऊटी शहरों की यादें सजग हो गईं। अपने देश की माटी की सोंधी महक, अपने आँचल के छोर की गाँठ में बाँध लाई हूँ। मर्सिडीज़ पर लगे सतर्क तिरंगे ने, और अमीरगन स्थित कौंसलावास के मस्तक पर लहराते परचम ने, भारतीयता के एहसास को और भी गहरा किया है जैसे।

'मदाम. . . .वेलकम्. . . .!' शोफर के कहे चन्द शब्दों से सजग मैं, धीरे से गा ी के बाहर उतर प ी हूँ। मंद बहती शीतल हवाओं ने आगे बढ़ कर अदृश्य आलिंगन किया हो जैसे। गेट के पास दीवार पर लगे पीतल के चमचमाते चौकोर टुक े पर, हिन्दी के सशक्त अक्षरों से लिखे 'भारतीय कौंसलावास' को ऊँगलियों से छूकर धीरे से अपने प्रथम आगमन का एहसास दिलाया है मैंने। प्रवीण के साथ पहा  की ऊँचाइयों पर बसे अपने घर तक पहुँचने की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए हँस प ी हूँ। सूरजमुखी और गेंदे के फूलों की पीली क़तारों से घिरी, संगमरमरी बावन सीढ़ियों ने मुझे घर के दरवाज़े तक बेहिचक पहुँचने की चुनौती दी है। बावले पैरों की गति पर आज कोई लगाम नहीं। हँस कर हर चुनौती स्वीकार की है मैंने। घर के मुख्य-द्वार के पास पहुँचकर स्वर्ग की स्वप्निल तस्वीर जैसे अनायास ही सजग हो गयी है। एक तरफ विस्तृत हरी घास की चादर और सतरंगे फूलों की क़तारों से घिरा विशाल स्वीमिंग-पूल, तो दूसरी ओर बौसफोरस समुद्र का असीमित फैलाव। खुले बरामदे में निरंकुश ठण्डी हवाओं की दस्तक, मुझे अनायास ही विस्तृत सागर की सिहरती लहरों का आभास दिला गई है। चाय के प्यालों से उभरती भीनी स्वाद के पार सामने की ओर देखा है। करवटें लेती लहरें कोई बंधन नहीं देखतीं, न ही मानती हैं। एशिया और यूरोप को मिलाता 'बौसफोरस ब्रिज' मेरा प ोसी है। हाथ आगे बढ़ा कर हवाओं में उसे छूने की नाकाम कोशिश की है। 'वरल्ड्स ओपन एअर म्यूज़ियम' के नाम को साकार करता यह शहर, मुझे कब अपने सम्मोहन में बाँधता चला गया, पता ही न चला। पानी के किसी भी जमाव से डरता मेरा हाइड्रोफोबिक मन, किन पराजित मदहोश पलों में इस्तानबुल शहर के समुद्री पानी से आलाप कर बैठा, याद नहीं। बचपन में पढ़े इतिहास की पुस्तकों के पन्नों पर लिखे चौदहवीं शताब्दी के 'औटोमन एम्पायर' की कहानी, आज मेरी आँखों के सामने सजग और साकार स्वरूप लिये विस्तृत ख ी है। इस्तानबुल शहर के भव्य विस्तार तले अनगिनत ऐतिहासिक प्रश्नों के उत्तर कैद हैं। इनकी आज़ादी ही मेरे कौतुहल मन के अनगिनत सवालों का आश्वासित दिलासा है। नहीं. . . .अतातुर्क के इस देश को पढ़ने के लिए मुझे समय चाहिये। चंद दिनों की मोहलत नहीं, कई महीनों का वायदा करना होगा। इतिहास की कहानियाँ किसी एक रात की गायकी नहीं होतीं। अपने जिज्ञासु, असंयमी मन को आश्वासित किया है मैंने। समय के छोटे टुक ों में इस शहर से मुझे मिलना है। आज, कल, परसों. . . .और न जाने कितने दिनों का वायदा है मेरा इस शहर से।

प्रवीण ने पास आकर आहिस्ते-से कुर्सी खींचकर बैठते हुए, इस शाम को मेरे साथ बाँटने की अनकही सहमति दी है। उनके कंधों पर धीरे से सर को टिका कर आँखें बंद कर ली हैं मैंने। सागर का पानी, मेरी आँखों की चौखट पर ठिठकी हुई बूँदें बन कर मुझसे प्रश्न कर बैठा है - 'इतनी देर क्यों लगाई....यहाँ आने में....?' पलकों को निरंकुश कर, उन्हें बह जाने दिया है मैंने। पलट कर देखा है, इस्तानबुल शहर के तट पर बसी भव्य विशाल समुद्री लहरों की बेलगाम मायानगरी मेरे अटूट फैसले पर अनायास ही अट्टहास कर उठी है....!!

## कितना अच्छा होता !

**दीपमाला वर्मा**

रात की गहरी खुमारियों में लिप्त
बासी चाँदनी से धुली
रजनीगंधा की पनपती कोंपलें
जब धीरे से सुबह की गोद में उठीं
उन सिहरते फूलों की क़तारों को
जो गुलदस्ते में न सजाया होता
तो शायद कितना अच्छा होता !

ज़िन्दगी ने चंद अपाहिज साँसों को
माटी का सहारा दिया तो ज़रूर था
सावन की मंद भीगी बयारों में
उम्र के बढ़ाव का आश्वासन सौंपा था
धूप के रेगिस्तानी अंगारों तले
जो रंजिश का दामन न फैलाया होता
तो शायद कितना अच्छा होता !

अजनबी शहर की दौ ती रफ़्तार में
भी  से भरे भागते शहर में
बोझिल प्रश्नों में समाहित, व्यथित
विवश उद्‌गारों के बाज़ार में
अकेलेपन के बेनाम सौदागर से
जो आज सौदा न किया होता
तो शायद कितना अच्छा होता !

भय की शैय्या पर उठती-बैठती
बागी सोच की उज्ज्वलित लपटों ने
मासूम अमूल्य साँसों का उपहार ले
मौजी बदशक्ल बगावती हृदय से
जो निश्छल बरसात का वायदा किया होता
तो फिर रजनीगन्धाओं का संहार न होता
तो शायद कितना अच्छा होता !
तो शायद कितना अच्छा होता !!

# कर्मदान

**करुणाश्री**

संघर्ष का नाम ही जीवन है फिर इसकी ऐसी अभिव्यक्ति जिससे निराशा लगती हो किसी भी स्थिति में वरेण्य नहीं हो सकती। इंसान की यात्रा कर्म, श्रम और संघर्ष है। जिस जीवन में संघर्ष नहीं, वह जीवन निरर्थक है। वे इंसान कितने विचित्र प्रकृति के होते हैं जो कर्म, श्रम, कर्म, मरण, यश, अपयश का महत्व नहीं समझते।

अराध्यमय जीवन की उपादेयता को समझाते हुए डॉ. देव ने विद्यार्थियों को स्पष्ट किया और अंत में बोले, 'भाव प्रवण संदर्भ ही जीवन की अमूल्य निधि है।'

कक्षा से बाहर निकल कर कॉलेज लांज में हैंड बैसाखी के सहारे धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये।

'डॉ. देव. . . .डॉ. देव. . . .प्लीज़ लिसिन. . . .प्लीज़ लिसिन।'

डॉ. देव के बढ़ते कदम रुके और वो चश्मा उतारते हुए बोले, 'क्या बात है, मिस मार्टिना?'

आपका लेख बेहद पसंद आया। बच्चों को प्रेरणा मिलेगी और जीवन में कर्म की महत्ता को समझ सकेंगे। मेरी ओर से बहुत-बहुत बधाई स्वीकार हो। सुना है, सरकार आपको सम्मानित भी कर रही है, विकलांग होम को खोलने के लिए। डॉ. देव मुस्करा दिए और बोले मार्टिना जन्म लेना इसका प्रमाण है हम कर्ममय हों। अमीर हो, गरीब हो, चाहे लँग े हो या अंधे या बहरे बिना कर्म के जीवन नारकीय-सा हो जाता है। जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान जीवन रूपी अरण्य में पूरे साहस के साथ प्रविष्ठ ही हो सकता है। भाग्य के भरोसे बैठने से कुछ हो सका हो तो कुरुक्षेत्र का कवि दिनकर यह नहीं लिखते - यह अरण्य जीवन को काटे, अपनी राह बना ले। क्रीत दास यह नहीं किसी का, जो चाहे अपना ले।

कर्म की इस व्यापकता और अनिवार्यता से प्रेरित होकर तुलसीदास जी को भी लिखना प ा था कर्म प्रधान विश्व रची राखा। सृष्टि अपने-आप में कर्ममय है। जीवन के लिए सही मार्ग चुन लेना कर्म से ही संभव है। इन्हीं शब्दों के साथ डॉ. देव ने मार्टिना से घर जाने की अनुमति ली।

मार्टिना ने मुस्कुरा कर सिर हिला दिया और डॉ. देव को देखती रही फिर स्वयं भी लॉन के कोने में जाकर घनी छाँव के नीचे बैठ गई और सोचने लगी डॉ. देव के विषय में जो गत दस वर्षों से नेहरू कॉलेज से जु े थे एक प्राध्यापक के रूप में। कितने हँसमुख प्रकृति के व्यक्ति हैं। जीवन में कभी भी निराशा को गले नहीं लगाया। बस मेहनत, लगन, कर्म से सदैव जु े रहे अपनी मंजिल को पाने के लिए। अचानक ही समय ने ज़िन्दगी में तूफान ख ा कर दिया था। बीमार माँ की सेवा करते-करते थक-से गये थे। रुपया-पैसा पानी की तरह बहाया। लेकिन लकवे से पी ि त माँ ने समय से पूर्व साथ छो दिया। डॉ. देव टूट गये। ब ी बहन विदेश में जा बसी अपने पति के साथ। छोटा भाई व्यापार में व्यस्त था। धन-दौलत की कमी नहीं थी। लेकिन डॉ. देव की मुसीबतों के समय किसी ने भी मदद नहीं की।

आर्थिक अभाव से गरीबी गले से बँधी रही। लेकिन डॉ. देव ने आशा नहीं छो ी और अपाहिज होने के बाद भी कर्म द्वारा जीवन को आगे बढ़ाया। ट्यूशन, लेखन कार्य से ज़िन्दगी की सीढ़ी पर चलना शुरू किया और धीरे-धीरे चढ़ते गये। अंतिम सीढ़ी को प्राप्त किया। प्राध्यापक बन कर विज्ञान क्षेत्र में विशेष रुचि होने के कारण सरकार ने फैलोशिप प्रदान की और विदेश जाकर नयी-नयी खोजें कीं। विदेश में ही कृत्रिम अंगों को लगवा कर आगे बढ़ना और चलना सीखा। सदैव सद्भाव प्रवृति और मधुर स्वाभाव के कारण सभी के प्रिय होने से सहयोग मिलता रहा। लेकिन डॉ. देव ने जीवन कर्म की महत्ता को स्वीकार किया। किसी पर आश्रित न होकर, स्वयं ही अपना मार्ग बनाया, वो भी सच्चा मार्ग जिससे बच्चे-बूढ़े प्रेरित हो सकें। जीवन अरण्य में सफल और सुखी बनने के लिए आँसुओं को पिया। पसीने की हर बूंद से कर्म ईंट तैयार की। कॉलेज का विद्यार्थी वर्ग प्रेम के मसीहा का दीवाना था। हर पल, हर क्षण विद्यार्थी समूह में घिरे रहना डॉ. देव की आदत थी। सदैव कहा करते

थे - 'जीवन में कर्म और भाग्य दोनों का अस्तित्व है। मानव अपना कर्म करे बाकी प्रकृति पर छो दे। कर्म आवश्यक है और यही वह साधन है जो मानव को श्रम की ओर ले जाता है। संघर्षों के रास्ते को पार करने की प्रेरणा देता है।' इन्हीं सब बातों से प्रेरित हुई मार्टिना डॉ. देव को आंतरिक रूप से चाहने लगी। अपना गुरु बनाया और समय-समय पर सहयोग प्रदान करती रही। लेकिन उन्हें अपना नहीं सकी। फिर भी उनके सृजनात्मक कार्यों में पूर्ण सहयोग दिया।

एक दिन विकलांग होम में विद्यार्थियों के ट्रेनिंग कैम्प में मार्टिना साथ थी। डॉ. देव कर्म और मानव जीवन पर व्याख्यान दे रहे थे। मानव जीवन का इतिहास कर्म की लेखनी से लिखा जाता है। हमारे शरीर के पात्र में कर्म-स्याही की एक बूंद रहती है तो तब हम मानव बने रहते है, और पूरी सार्थकता से अपना काम करते हैं। चेतना का परिणाम अब स्थिति बौद्धिक चिंतन सभी कर्म की अवस्थाएँ हैं जो काम स्थान परिस्थिति भेद से विभिन्न रूप धारण करती है। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी का कर्तव्य है, वह निष्ठाभाव से जीवन कर्म करे। आशा विश्वास की भावना ही मानव की दौलत है। इसके मूल्य का महत्व हम सभी को समझना चाहिये। इस प्रशिक्षण कैम्प में विकलांग बच्चों को विशेष उपहार प्रदान करना चाहूँगा जिससे मेरे बाद यह होम कार्य क्षेत्र का दानी बना रहे। आने वाली पीढ़ी को नयी राह दिखा कर देश की बिखरी हुई शाखाओं को एकता की डोर से बाँधे रखे। जीवन में आराध्यमय क्षणों को आराध्यमयी बनाये रखे। सारे जीवन को एक मानकर चलता रहे। जीवन की सारी क्रियाओं की पूजा सदैव करता रहे। सभी भेद को समाप्त करके एकसूत्र में बाँधे रखे। वेद-उपनिषद, कबीर, गुरुनानक की बातों का मूल्य समझ कर।

'नये युग की समग्र दृष्टि द्योतक के लिए सम्पूर्ण जीवन की बगिया को रंग-बिरंगे फूलों में सजा-सँवरा बनाये रखने के लिए विदेशी नारी मिस मार्टिना लुईस को 'विकलांग होमं उनके हाथों में प्रदान कर रहा हूँ। विश्वास है मेरी अनोखी भेंट सभी को पसंद आयेगी। मिस मार्टिना, कर्मयोगी नारी हैं। समझदारी की प्रतिमा हैं।'

मिस मार्टिना आश्चर्यचकित हो गयी और कुछ बोल नहीं पायी, उसकी खुशी से आँखें गीली हो गयीं।

सभी विकलांग बच्चे खुशी से झूम उठे। होंठों पर हँसी का फव्वारा फूट प ा और डॉ. देव बच्चों की दौ  में कैद हो गये।

मिस मार्टिना चुपचाप अन्दर गयी और दो बैसाखियों के सहारे चलती हुई डॉ. देव और बच्चों के निकट ख ी हो गयी। सभी बच्चे मुस्कुरा दिये। तभी बबलू ने कहा, ' डॉ. अंकल, मार्टिना दीदी का यही कर्मदान है।

डॉ. देव पथरायी आँखों से मार्टिना को देख रहे थे।

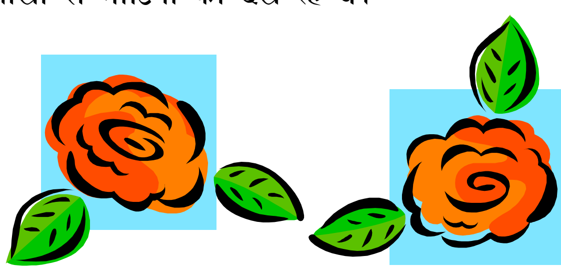

"भारत की माटी मेरा स्वर्ग है
भारत का कल्याण ही मेरा कल्याण है
फेंक दे यह शंख बजाना
छो   दे प्रशस्ति गान करना
यदि तेरे पास दो वक्त की रोटी न हो"

ये शब्द उस तेजस्वी सन्यासी के हैं जो हमारी सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्वाधीनता के जनक थे भारतीय नवजागरण के अग्रदूत स्वामी विवेकानंद

# नहीं पता था....

**ममता रहेजा**

नहीं पता था....
जीवन इतना सहज
इतना सरल
इतना सरस
इतना मधुर
इतना सुन्दर होगा
तुम आये तो
मिट गया सब
मन का अवसाद
छँट गये निराशा के बादल
सब कुछ इतना साफ
इतना निर्मल
इतना जीवन्त होगा
नहीं पता था....
जीवन का ये रूप भी है
अनोखा, अनंत संभावनाओं से भरा
तुम आये तो
भीतर उठा प्रचण्ड तूफ़ान
लगा कि यही है
वर्षों की तपस्या का
जन्म-जन्मांतर की तलाश का
सुन्दर अन्त
जीवन का आधार
ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट उपहार
कभी मेरा होगा
नहीं पता था....
मेरे मन की अभिव्यक्ति
तुम्हारे रूप में व्यक्त होगी
यूँ कि तुममें मुझमें
कोई भेद न होगा
सब कुछ मेरा अपना
इतना सुन्दर होगा
दिल का खाली कोना
किसी दिन भर जायेगा
अंधकार के बाद
नया प्रभात, नया उजाला
इतना उज्ज्वल होगा
नहीं पता था....
मायने ज़िन्दगी के यूं बदल जाएँगे
अहसास कुछ क्षण
ठहर जाएँगे
बदलेगा कभी
ज़िन्दगी का मंज़र
सुख भी मेरा अपना होगा
दुखों के इस रणक्षेत्र में
कोई मेरा अपना होगा
नहीं पता था....
नहीं पता था....

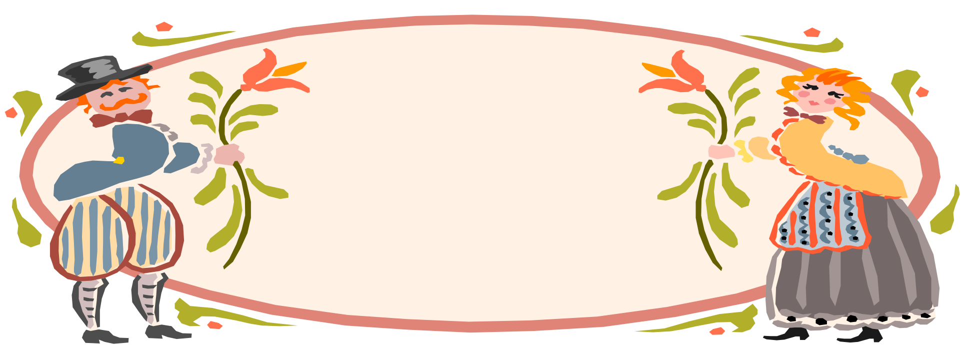

# भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

सुषमा खुल्लर

भारतीय इतिहास के विवेचनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि सदियों से महिलाओं ने देश के सांस्कृतिक मूल्यों और उसकी नैतिक परम्परा को बनाये रखते हुए, युद्ध और शांति के समय कलम और तलवार, दोनों से ही उत्कृष्ट योगदान किया है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी ने नारी शक्ति को शीघ्र पहचान लिया था, और उन्हें विश्व में बेजो  स्वतंत्रता आंदोलन में समान भागीदारी का निर्वाह करने के लिए अधिकृत किया था। भारत ने जिस तरह से आजादी की ल ाई ल ी, उसकी मिसाल दुनिया में कहीं नहीं मिलती।

गाँधी जी ने सभी भारतीय महिलाओं से यह उम्मीद नहीं की कि वे जोन ऑफ आर्क अथवा झाँसी की रानी बनें। उनका कहना था, 'झाँसी की रानी को विजित किया जा सकता है, किंतु सीता को नहीं जीता जा सकता।' इसलिए उन्होंने महिलाओं का आह्वान किया कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा लें और राष्ट्र के गौरव को बचाएँ। उनके आह्वान का सम्मान करने वाली पहली महिला स्वयं उनकी पत्नी कस्तूरबा गाँधी थीं। आत्म बलिदान की प्रतीक कस्तूरबा ने विशेष रूप से इस समय नेतृत्व के गुणों का परिचय दिया, जब गाँधी जी जेल में थे। दक्षिण अफ्रीका और स्वदेश, दोनों ही स्थानों पर वे गाँधी जी के अहिंसक प्रयासों की शक्ति का स्तम्भ बनी रहीं, और सभी अहिंसक आंदोलनों में हमेशा अग्रणी भूमिका अदा की। जीवन के प्रति उनका एक खास नज़रिया था। गाँधी जी के शब्दों में 'कस्तूरबा के जीवन के प्रति दृष्टिकोंण का अर्थ था स्वयं कस्तूरबा द्वारा प्रस्तुत नज़रिया, न कि मोहनदास करमचंद गाँधी का नज़रिया।' उनकी मृत्यु फरवरी, १९४४ में उस समय हुई, जब वे पुणे के निकट एक बंदी शिविर में नज़रबंद थीं। हालाँकि वे स्वयं निरक्षर थीं, लेकिन उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और शिक्षा के माध्यम से उनकी अधिकारिता के लिए हमेशा प्रयास किये।

राष्ट्रीय आंदोलन में महान योगदान करने वाली अन्य महिलाओं में मदाम कामा, सिस्टर निवेदिता, ऐनी बेसेंट, पंडित रमाबाई, सरोजिनी नायडू, कमला नेहरु, मणिबेन पटेल, विजयलक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी, प्रभावती देवी और हजारों अन्य स्त्रियाँ शामिल हैं, जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपने परिवारों का बलिदान किया। नए भारत के निर्माण से जु े आंदोलन में कुछ ऐसी क्रांतिकारी महिलाओं ने भी योगदान किया, जो अहिंसा की पूर्ण समर्थक नहीं थीं, और उनके तौर-तरीके क्रांतिकारी थे। इनमें शहीद भगतसिंह की सहयोगी दुर्गाभाभी, सत्यवती देवी, खुर्शीद बहन, लाडो रानी जुत्शी, अरुणा आसफ अली आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त दुर्गाबाई देशमुख और अम्मू स्वामीनाथन जैसी कुछ ऐसी महिलाएँ भी थीं, जिन्होंने सक्रिय समाज-सेवा के जरिए देश की सेवा की। महात्मा गाँधी ने कहा था कि 'यदि सर्वोच्च साहस विकसित करना हो, तो इस बारे में भारत की महिलाएँ स्वाभाविक नेता हैं।'

मदाम कामा की कहानी अत्यंत रोमांचक है। उन्होंने महात्मा गाँधी से भी पहले भारत में अपना आंदोलन शुरू कर दिया था। १९०७ में सरदार सिंह राणा के साथ कामा ने भारत का तिरंगा फहराया था। एक प्रेरक भाषण में उन्होंने कहा था, 'यह ध्वज भारत की आजादी का प्रतीक है। इसे धारण करें, यह जन्मजात है। भारतीय युवाओं के बलिदान से यह पहले ही पवित्र हो चुका है। सज्जनों और देवियों, मैं आप सबका आह्वान करती हूँ कि भारतीय स्वतंत्रता के ध्वज को सलाम करो।' अवसर था स्टुटगार्ड, जर्मनी में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन का। सभी प्रतिनिधियों ने ख े होकर स्वतंत्रता के झंडे को सलाम किया।

१९०९ में जब २२वर्षीय देशभक्त और इंजीनियरी के एक विद्यार्थी मदनलाल धींग ा को लंदन में फाँसी दी गयी, तो उन्होंने कहा था 'आज ज्यादा से ज्यादा मदनलालों की आवश्यकता है। वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय के सहयोग से मदाम कामा ने 'मदन तलवार' नाम की एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया, जो बर्लिन से छपती थी। यह पत्रिका शीघ्र ही विदेश स्थित सभी भारतीय क्रांतिकारियों का मुखपत्र बन गयी थी।

स्वतंत्रता आंदोलन में ब्रिटेन द्वारा हिंसा के इस्तेमाल की आलोचना का जवाब देते हुए उन्होंने कहा था, 'कुछ समय पहले हिंसा की चर्चा करना भी मैं घृणित समझती थी, किंतु जब मैंने उदारवादियों की निर्दयता, पाखंड और धूर्तता देखी, तो वह भावना गायब हो गयी। हम हिंसा की निन्दा क्यों करें, जब हमारे दुश्मन हमें ऐसा करने के लिए प्रेरित कर रहे हों। अगर हम बल प्रयोग करते हैं तो इसलिए कि हमें बलप्रयोग करने के लिए बाध्य किया जाता है।' मदाम कामा का भगतसिंह और उनके साथियों पर गहरा प्रभाव प ा था। 'क्रांतिकारियों की माँ' के नाम से विख्यात मदाम कामा ने देशवासियों से कहा था कि वे विदेशी दास्ता से मुक्ति पाने का संकल्प लें।

दुर्गावती और सुशीलादेवी दो बहनें थीं, जिन्होंने भगतसिंह युग में क्रांतिकारी आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान किया था। दुर्गावती दुर्गा भाभी के रूप में लोकप्रिय थीं, जिनके साथ भगतसिंह ने १८दिसम्बर १९२८ को, वेश बदल कर कलकत्ता मेल से यात्रा की थी।

दुर्गा भाभी भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के आकाश में उल्का की तरह प्रकट हुईं। वे क्रांतिकारी भगवती चरण वोहरा की पत्नी थीं, जो ब्रिटिश पुलिस के लिए एक बहुत ब ा आतंक थीं।

वे नौजवान भारत सभा की एक सक्रिय सदस्या थीं। उनके जीवन का सबसे गौरवशाली क्षण उस समय आया, जब १७दिसम्बर, १९२८ को भगतसिंह और सुखदेव सॉन्डर्स को मौत के घाट उतारने के बाद उनसे सलाह करने और आगे की कार्रवाई पूछने के लिए उनके घर पहुँचे। यह उन्हीं की योजना थी कि उन्हें कोलकाता के लिए रवाना होना चाहिये। भगतसिंह ने एक अँग्रेज 'साहिब' की वेशभूषा में दुर्गा भाभी और उनके बच्चे के साथ कलकत्ता मेल से यात्रा की।

सत्यवती का नाम भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। वे स्वामी श्रद्धानंद की यशस्वी पुत्री थीं, जिनका एकमात्र लक्ष्य भारत को आज़ाद कराना था। अपने ३७वर्ष के जीवनकाल में से सत्यवती ने १२वर्ष जेल में बिताये। एक दफा तो वे नवजात शिशु के साथ भी जेल में रहीं। वे ११बार जेल गयीं और भारत की स्वतंत्रया प्राप्ति से दो वर्ष पहले चल बसीं। उन्होंने स्वदेशी का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया और गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया।

लाडो रानी जुत्शी, जो लाहौर के एक अधिवक्ता की पत्नी थीं और उनकी दो पुत्रियों - जनक कुमारी जुत्शी और स्वदेश कुमारी जुत्शी ने भी पंजाब में विशेषकर लाहौर में सविनय अवज्ञा आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने महिला सत्याग्रहियों का एक नया आंदोलन शुरू किया, जिसकी सदस्य लाल पाजामा, हरी कमीज़ और सफेद टोपी पहनती थीं। उन्होंने स्वदेशी और पूर्ण नशाबंदी के लिए काम किया। लाडो रानी गहन राष्ट्रभक्त और पूरी तरह निभीक थीं, जो आत्म-बलिदान और त्याग का प्रतीक बन गयी थीं। वे अक्सर कहा करती थीं कि, 'जब कोई सरकार महिलाओं को गिरफ्तार करना शुरू कर देती है, तो समझ लेना चाहिये कि उसके दिन गिने-चुने रह गये हैं।' वे पूरी तरह गाँधीवादी थीं और शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक आंदोलन में विश्वास रखती थीं।

किंतु, बंबई की उषा मेहता एक अलग तरह की क्रांतिकारी थीं, जिन्होंने अपने फ्रीडम रेडियो के माध्यम से स्वतंत्रता की मशाल को जलाये रखा। वे असाधारण प्रतिभाशाली विदुषी थी। वे डॉ. राममनोहर लोहिया के शब्दों में, 'दुर्लभ साहस और दुर्लभ योग्यताओं से युक्त महिला थीं।'

उषा मेहता गाँधी जी द्वारा शुरू किये गये भारत छो ो आंदोलन के दौरान प्रकाश में आयीं। उन्होंने वॉयस ऑफ फ्रीडम नाम से एक गुप्त रेडियो प्रारम्भ किया। खुर्शीद बहन, जो महाराष्ट्र से एक अन्य युवा महिला थीं, ने उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत में काम किया और वे पश्तो-भाषी स्वतंत्रता सेनानियों के बीच अत्यंत लोकप्रिय हुईं।

१९४२ के आंदोलन की प्रमुख नायिका अरुणा आसफ अली अत्यंत दृढ़ व्यक्तित्व की धनी थीं। मूलरूप से वे गाँधीवादी थीं, लेकिन अहिंसा के तौर-तरीकों के प्रति उनका नज़रिया बदल गया था। वे कई बरसों तक भूमिगत रहीं, उन्होंने बंबई में राष्ट्रीय ध्वज फहराया, वे दिल्ली की महापौर बनीं और सभी राजनीतिज्ञों का दिल जीता।

वे शानदार सुवक्ता थीं, जिन्होंने अपनी कलम से भी बेहतरीन योगदान किया। डॉ. राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण के साथ उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय क्रांग्रेस की समाजवादी शाखा की

स्थापना की। भारत की इन नारियों ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष सिर्फ़ पुरुषों का विशेषाधिकार नहीं है।

महिलाओं के योगदान में बौद्धिक अंतराल सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित और सुचेता कृपलानी जैसी महिलाओं द्वारा दूर किया गया। इसमें एम. एस.सुब्बालक्ष्मी, और कैप्टन लक्ष्मी सहगल जैसे कलाकारों का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है, जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। आज़ाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) की रानी झाँसी रेजिमेंट की प्रमुख के रूप में वे नेताजी के सर्वाधिक विश्वासपात्र और वफादार सहयोगियों में से एक थीं।

सरोजिनी नायडू को स्वतंत्रता संग्राम में भारत कोकिला के नाम से जाना जाता है। नेहरु जी को एक पत्र में उन्होंने लिखा था, 'मैंने उस समय आपका चेहरा देखा जब चुनाव के अवसर पर आपका शानदार सत्कार किया जा रहा था। मुझे महसूस हुआ कि एक साथ आपका राज्याभिषेक और क्रूसारोपण हो रहा है। वास्तव में इन दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, आज के युग में वे लगभग एक-दूसरे का पर्याय हो गये हैं, विशेषकर आपके मामले में, क्योंकि आप अपनी बौद्धिक जवाबदेही और प्रतिक्रिया में अत्यंत संवेदनशील और नाज़ुक मिज़ाज हो और आपको कमज़ोर व्यक्तियों की अवश्यंभावी विशेषताएँ, जैसे भौंडापन, असत्य, भ्रष्टाचार, धोखाध ी, से निपटने में अपेक्षाकृत कम सूक्ष्म और कम सजीव धारणा और आशंका रखने वाले उन पुरुषों और स्त्रियों की तुलना में सैंकडों गुणा मार्मिक कष्ट होंगे, जो उग्र और विस्फोटक स्वर में अपनी कमजोरियाँ छिपाते हैं।'

इसी प्रकार एक अन्य पत्र में उन्होंने गाँधीजी को लिखा था, 'विशेषज्ञ मानते हैं कि मेरा हृदय रोग बहुत बढ़ चुका है, और ख़तरनाक स्तर पर पहुँच चुका है परंतु मुझे तब तक चैन नहीं मिल सकता, जब तक कि चिरयातनाग्रस्त भारत की त्रासदी पर मैं विश्व का हृदय पश्चाताप से अनुप्राणित न कर दूँ।' इस प्रकार सरोजिनी नायडू ने अपने कवि-हृदय से स्वतंत्रता संग्राम में योगदान किया।

तत्कालीन कपूरथला रियासत की राजकुमारी, राजकुमारी अमृतकौर १६वर्ष तक गाँधी जी की सचिव रहीं। वे स्वतंत्र भारत की पहली स्वास्थ्य मंत्री बनीं। राजकुमारी अमृतकौर अनेक बार जेल गयीं और अनेक अवसरों पर उन पर लाठीचार्ज किया गया। पंजाब में मार्शल लॉ के दिनों में अमृतकौर गाँधी जी के सम्पर्क में आयीं। उन्होंने राजसी ठाठबाट त्यागकर गाँधी जी के आश्रम में रहने का निश्चय किया।

स्वतंत्रता संग्राम में एक अन्य महत्वपूर्ण नाम दुर्गाबाई देशमुख का है, जिन्होंने नमक सत्याग्रह में हिस्सा लिया। आयरन लेडी के नाम से लोकप्रिय दुर्गाबाई ने १९३० के दशक में ब्रिटिश अधिकारियों को पराजित कर दिया और आंध्र महिला नामक पत्रिका का संपादन किया।

इन सभी महिला सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपनी सक्रिय समाज-सेवा से स्वतंत्रता संग्राम के आधार को व्यापक बनाया।

इस संदर्भ में अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण नाम अम्मू स्वामीनाथन का है, जिन्हें प्यार से चेरि अम्मा (चाची) कहा जाता था। वे मद्रास में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की संस्थापक सदस्य थीं। १९३४ में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुईं और १९४२ में भारत छो ो आंदोलन में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई। उनका अहिंसा और गाँधीवादी अर्थव्यवस्था में गहरा विश्वास था। वे संविधान सभा की सदस्य बनीं और सामाजिक न्याय तथा लिंग समानता पर आधारित नये भारत के निर्माण में योगदान किया।

# नारी शक्ति (तब और अब)

डॉ. सरला अग्रवाल

भूल गये सब परम्परायें
भारत की प्राचीन प्रथाएँ
अपनी वैदिक संस्कृति
नारी का सम्मान !
मातृशक्ति की पूजा
स्वयं वर चुनने का अधिकार
देश-देश के महारथियों
को जब देते थे आमंत्रण
बल-पौरुष रूप का
जब होता था खुला प्रदर्शन।
सीता ने चुना राम को
द्रौपदी ने अर्जुन को
सावित्री ने सत्यवान् को
दमयंती सुंदरी ने नल को।
पिता-बंधु के विरुद्ध भी
किया वरण जब नारी ने
सुभद्रा, संयुक्ता, रुक्मणी
थीं दृढ़ निश्चय की धनी
हो निर्भय वर संग चल प ीं।
स्वयंवरा थीं नहीं डरीं
भरी सभा थी वीरों की
शस्त्र-शास्त्र गंभीरों की
थीं तेजस्वी वे सतीत्ववती
साहस की अनुपम कृति
अब होती नारी की प्रदर्शनी
और चाहिए सर्वगुण सुदर्शनी
उच्च शिक्षा संग नौकरी
हो सेवादार दहेजयुक्त छोकरी।
लेकर साथ अनुपम गुण
लेते तोल तराजू पर
जिस कन्या का पल ा भारी
ब्याह लाता वर-पिता वही कुमारी।
किशोरी की इच्छा का मेल
सतरंगी सपनों का झोल
सब तुल जाते साथ वहीं।
वर काला, बूढ़ा, लँग ा हो
वर वर है, ल का है, जैसा हो
क्या इतना ही काफी नहीं?
पर इस पर भी वर खुश नहीं।
नित्य निराली फरमायश
वधु की होती अजमायश
कर सकती कितना सहन
ला सकती कितना गहन
एलास्टिक-सा खिंचता वज़न
सहनशक्ति होती खतम।
तब साम दाम दण्ड भेद
किये जाते सारे प्रयोग
अंत कुछ भी हो सकता
प्रता ना-तन्दूर चल सकता।
भाषण सब धुरन्धर देते
पर बहुओं संग ऐसा ही करते
बेटी को जब दी बिदाई
अपनी करनी आगे आई
हुआ साथ सब उसके वैसा
जिसने वधु संग किया था जैसा।
बंद करो अब ये हत्याएँ
वधु को देना यंत्रणाएँ
नारीशक्ति की पूजा से ही
आती घर में सुख शांति कमाई।

# मेरा जीवन एक खुली किताब है

## दिनेशनन्दिनी डालमिया से चन्द्रकांता की बातचीत

दिनेशनंदिनी डालमिया जी की पावन स्मृति में प्रस्तुत है चन्द्रकांता जी द्वारा कुछ समय पहले लिया गया साक्षात्कार
संपादक

'श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया से कई वर्ष पहले जब एक साहित्य संगोष्ठी में भेंट हुई, तो उनकी कुछ-कुछ तटस्थ, गम्भीर एवं वीतरागी भंगिमा देख कर लगा था जैसे दूर किनारे बैठ कोई तमाशाई दुनिया देख रहा हो। सोचा, शायद उन रचनाकोरों में होंगी, जो खुद को अपने कद से ऊँचा मान, अगले को खामखाह बौना साबित करने का शौक पाल लेती हैं। लेकिन जितना उनके करीब आने और उन्हें जानने का मौका मिला, उतना ही उनकी अंतरंगता और आत्मीयता से सराबोर होती गई। अपनी रचनाओं में खुद को बेनकाब करने वाली इस वरिष्ठ साहित्यकार के साहस और रचनात्मक ऊर्जा को देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे एक किशोर कवयित्री, दिनेशनंदिनी चौरडिया, प्रेम और सौन्दर्य के तन्मय राग गाने वाली, जीवन को चुनौती समझ जीने का जोखिम उठाती तमाम विरोधी परिस्थितियों में खुद को साबुत बचाती - सृजन करती रही। तेरह वर्ष की आयु से गद्य-गीत लिखने वाली दिनेशनंदिनी जी ने एक लम्बी साहित्य-यात्रा के दौरान करीब पचास छोटी-ब ी पुस्तकें लिखी, जिनमें कहानी, उपन्यास, कविताएँ आदि शामिल हैं। यों दिनेशनंदिनी जी का कहना है कि 'मैं अपने घर की चारदीवारी को लाँघ नहीं सकती, अपने ही वातायन से जितना देखा, उतना लिखा', लेकिन उनका वातायन आकाश-जैसा विस्तार लिए है, तभी तो उसमें केवल उनका ही जिया-भोगा दर्ज नहीं है, बल्कि एक ब` समाज के द्वन्द्व, तनाव, व्यवस्था के प्रश्न, स्त्री अस्मिता, संघर्ष एवं स्वप्नों से जु` गम्भीर सवालातों की प ताल भी की गई है। उनकी कविताओं में ही नहीं, उनके आत्म-कथात्मक उपन्यासों में भी उनके गाझिन अनुभव, गहरी अन्तर्दृष्टि, वैचारिक ऊर्जा और संवेदनात्मक घनत्व मिलता है। उन्होंने जीवन के कई रंग देखे, स्याह-सफेद, इन्द्रधनुषी ! कभी प्रेम में मीरा और राधा बन तन्मय भाव से गीत गाए, कभी प्रिय की प्रतीक्षा में जीवन 'जागती हुई रात' हो गया ! सुवर्ण पिंजरे में कैद होकर पारिवारिक प्रपंचों, अवमाननाओं, उपेक्षाओं के दंश सहे, अग्निपरीक्षाएँ दीं, पर खुद को बिखरने नहीं दिया। दायित्व निभाए और सच की तलाश करती रहीं। आखिर क्या है स्त्री जीवन का मर्म और अर्थ? 'नारी, 'विवश ज़िन्दगियों का पंजीकृत शब्द' क्यों है?' उनकी रचनाओं में हिंसक पशुओं के नाखूनों से नोंची गई बच्चियों की चीखें हैं, पर अपने दुखों से निस्तार पाने का साहस भी है। दिनेशनंदिनी जी का साहित्य ही नहीं उनका व्यक्तिगत भी निरन्तर बहने वाली नदी का-सा है। चट्टानों की परवाह न कर बहना, निरन्तर सृजन-रत रहना ! - कभी गूढ़ गंभीर, दार्शनिक, कभी माँ, बहन, नानी, दादी सी सहज, सरल और प्रेमिल ! आप घर आएँ तो उनकी मेहमाननवाज़ी आपको भिगोए बिना नहीं रहेगी। कभी मूड में आएँ तो हँसाएँगी, गुदगुदाएँगी भी ! ऐसी स्नेही दीदी दिनेशनंदिनी जी से साक्षात्कार केवल अनुभव से ही ताल्लुक रखता है। फिर भी उनसे कुछ बातें मैंने कीं, उन्होंने उत्तर भी दिए, साथ ही कहा, 'मेरा जीवन तो, खुली किताब है, मैंने अपने बारे में कुछ नहीं छिपाया।'

लेकिन क्या सब कुछ कहना सम्भव होता है? सब कुछ उँडेल कर तो मनुष्य रिक्त हो जाएगा, क्योंकि मनुष्य कोई ज पात्र नहीं है, वह रिक्त नहीं होता। तभी तो दीदी अभी भी कुछ कहना चाहती हैं, काफी कुछ कहने के बाद भी ! उनसे हुई बातचीत के कुछ अंश आपके लिए : चन्द्रकांता

**चन्द्रकांता** : प्रेम, समर्पण और जीवन से भरपूर 'शबनम' के गद्य-गीतों से शुरुआत कर, अपनी ताज़ातरीन पुस्तक, 'अब मैं नाचूँ नहीं गोपाल' तक आपकी साठ के करीब कृतियाँ प्रकाशित हो चुकीं हैं। साहित्य की कई विधाओं में, बदलते समय और समाज में व्यक्ति के द्वन्द्व-तनाव, राग-विराग, सम्बन्धों के विघटन, पीढ़ियों के अन्तर्विरोध, स्त्री विमर्श और तमाम विषयों पर आपने अनुभव के ताप से तपी रचनाएँ लिखी हैं और एक लम्बे अरसे से आप साहित्य जगत में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती आई हैं, इस लेखकीय ऊर्जा की अजस्त्र धारा का स्त्रोत कहाँ है? क्या कभी आपने इस पर सोचा कि वे कौन-सी स्थितियाँ या कारण थे जिन्होंने आपको लेखन के लिए उकसाया।

**दि. नं. डालमिया** : कान्ता, जीवन की लम्बी, ऊब -खाब स क पर चल कर, मैं जहाँ पहुँची हूँ, वहाँ से पीछे मु कर देखती हूँ तो पाती हूँ कि बहुत छोटी उम्र में मैं लीक से हट कर चलने लगी थी। एक विचित्र-सी उदासी और अकेलापन मुझे घेरे रहता था। इस मनःस्थिति के लिए मेरी भीतरी बुनावट, सोच, संवेदना, स्वप्न एवं आकांक्षाओं के साथ, बाह्य परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार रही होंगी, जीवन की पहली-पहली स्मृतियाँ मृत्यु की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ हुईं, क्योंकि मेरे जन्म के तुरन्त बाद मेरी माँ इतनी बीमार हुई कि न मुझे दूध पिला सकीं और न ही मुझे सँभाल सकीं। मैं

ननिहाल में पली। मामा ने बहुत प्यार दिया पर वे जल्दी ही गुज़र गए। बचपन में मुझे शीतला का प्रकोप हुआ जिसने चेहरे पर निशान छो  दिए। इससे मुझे जबर्दस्त कॉम्प्लैक्स हुआ। इसके लिए रिश्तेदार मेरी माँ को कठघरे में ख ा करते कि उसने ठीक से इलाज़ नही करवाया। अब शादी में बाधा आएगी, इत्यादि। इन सब बातों से मैं झुँझला उठती, मन दुखी भी हो जाता। उन्हीं दिनों मैंने प्रतिज्ञा-सी की कि मैं किसी के सामने प्रदर्शन नहीं करूँगी। रिवाज़ों से बँधी शादी न करके पढ़ूँगी, शिक्षिका बनूँगी। उस दिन से मेरा जीवन बदल गया। मामा के घर से अपने घर लौटने पर भी मैं अजनबी-सी महसूस करने लगी। उन दिनों अलग-अलग रहना, घंटों बैठे सोचना, मेरा स्वाभाव ही हो गया। एक आंतरिक युद्ध-सा चल रहा था मेरे भीतर। तब तक विधिवत् पढ़ाई भी नहीं हुई थी मेरी पर हिन्दी अच्छी थी और पढ़ने का शौक था। बारह वर्ष की आयु में मैंने एक लेख लिखा जो मेरे पिताजी को बहुत पसन्द आया। उन्होंने मुझे बराबर लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उस समय देश में अँग्रेजों के विरुद्ध गाँधी जी ने आंदोलन शुरू कर दिया था। मेरे मन में भी देश-प्रेम की लहर उठी और मैं राजनीति में जाने की सोचने लगी। पर वे दिन पर्दा प्रथा के दिन थे। मेरा बाहर जाना असम्भव-सा ही था। ननिहाल में जैन धर्म का बोलबाला था और घर में वैष्णवमार्गी मान्यताओं, परम्पराओं का पालन होता था। ऐसे में मैं वैष्णव सम्प्रदाय के वल्लभाचार्य के प्रेम और भक्ति की ओर आकर्षित हुई। राधा-कृष्ण के प्रेम के प्रामाणिक इतिहास-काव्य के पन्ने पलटती रही। तभी एक हादसा हुआ जिसने मुझे कलम पक ने को विवश किया और मैं लिखती गई।

**चन्द्रकांता** : जरूर वह ऐसा हादसा रहा होगा जिसने आपके अन्तर्मन को मथा और आप में आत्म-मुक्ति के लिए छटपटाहट भर दी। तभी आपकी कलम ने प्रेम और सौन्दर्य से लबरेज़, भावाकुल गद्य-गीतों को जन्म दिया, जिनमें राधा-कृष्ण का उत्कट प्रेम है, मीरा की विरहजन्य आकुलता है। 'शबनम' और 'मौक्तिकमाल' गद्यगीत संग्रहों में, लौकिक से अलौकिक होते प्रेम की दुर्निवार अभिव्यक्ति है। आपने प्रेम के विषय में कहा है, 'प्रेम, तू ही विश्व में महान सत्य है, पूर्ण सौन्दर्य और चिरन्तन प्रकाश है।' उनमें दैहिक ताप और श्रृंगारिक अनुभूतियाँ भी हैं, यहाँ पाठक के मन में एक स्वाभाविक-सा प्रश्न उठता है ऐसे प्रेम का आधार कोई देहधारी होगा। यह भी कि लौकिक प्रेम को अलौकिक रूप देने के क्या कारण हो सकते हैं? क्या उस समय की सामाजिक वर्जनाएँ, या छायावाद-रहस्यवाद का प्रभाव? या प्रेम की वह चरम अनुभूति, जो लौकिक में समाती नहीं थी?

**दि. नं. डालमिया** : तुमने मुझे पढ़ा है कान्ता, जानती हो, मेरा जीवन एक खुली किताब है। अपनी रचनाओं में चाहे वह कविता हो या उपन्यास, मैंने अपने जिये-भोगे अनुभवों का साक्ष्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह भी छिपाया नहीं, कि किशोरावस्था में मैंने एक प्रौढ़, आकर्षक एवं सुदृढ़ व्यक्तित्व के धनी पुरुष से प्रेम किया। वे विधुर थे, दोबारा विवाह नहीं करना चाहते थे। उनके इंकार ने मुझे गहरा धक्का पहुँचाया। वह इतना भयंकर आघात था मेरे लिए कि मैं आत्महत्या तक करने की सोचने लगी। मेरे शिक्षक के रोकने, समझाने पर वह हादसा होते-होते बचा। यह प्रेम मेरे आंतरिक अस्तित्व से ऐसे जु ा जैसे कबन्ध से सिर ! इसने मेरी आत्मा को विस्तार और मुझे जीवन के आघात सहने की शक्ति दी। लौकिक-अलौकिक के प्रश्न पर, मैं यह मानती हूँ कि मानवीय प्रेम और सौन्दर्य में जब गुणों का आरोपण होता है, तो वह उसे देवत्व प्रधान करता है। अन्तःकरण के बिम्ब-प्रतिबिम्ब बनते हैं, तू 'मैं' और मैं 'तू' बन कर अभिन्न हो जाते हैं। प्रेम में वही चरमोत्कर्ष का क्षण होता है। वह समय, स्थान, परिवेश स्वीकार या अस्वीकार से परे की चीज़ है। अपने उदात्त रूप में प्रेम 'वसुधैव कुटुम्बकम' की ज ें मज़बूत करता है। यह संस्कृति के ज्ञान में फूँका हुआ बीज-मंत्र है। आज भी प्रेम ही मेरा मंत्र है। प्रेम विहीन-दुनिया मुझे खोखली नज़र आती है। मेरे लेखन के मूल में प्रेम ही है।

**चन्द्रकांता** : जानती हूँ दीदी, तभी तो आज भी आप प्रेम कविताएँ लिख लेती हैं। अच्छा, यह बताइए, जब बहुत कम उम्र में आपके गद्य-गीतों ने आपको प्रसिद्धि दी, महादेवी वर्मा जैसी सिद्ध कवयित्री ने आपको सराहा, पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में आपको सेक्सरिया पुरस्कार मिला, तब आपको कैसा लगा? उस छोटी वय में पुरुषोत्तमदास टण्डन, रामकुमार वर्मा, जैनेन्द्र, प्रेमचन्द जैसे ब े साहित्यकारों की सराहना पाना सचमुच ब ी बात है। बच्चन जी ने तो अपनी आत्मकथा में आपका जिक्र करते हुए लिखा भी है कि उन दिनों आपके 'गद्य-काव्य की ब ी धूम थी', उस समय के साहित्यिक माहौल की कुछ स्मृतियाँ हमारे साथ बाँटिए।

**दि. नं. डालमिया** : पुरस्कार ने मुझे थो ा आश्चर्य में जरूर डाला, क्योंकि मैं अपने लेखन में ही तन्मय रहती थी। बाहर बहुत कम जाती थी। महादेवी जी से मेरी मुलाकात इन्दौर साहित्य सम्मेलन में हुई, जहाँ टण्डन जी ने मुझे गद्य-काव्य पढ़ने के लिए बुलाया था। घर से बाहर निकलने और ब े साहित्यकारों के सामने रचना पढ़ने का वह मेरा पहला मौका था। उस गीत की पहली और आख़िरी पंक्ति मुझे आज भी याद है।

**चन्द्रकांता** : सुनाइए न !

**दि. नं. डालमिया** : वह पंक्तियाँ कुछ इस तरह थीं, 'कालान्तर में कोई पूछे, दिनेश कौन थी, तो कहना, कि वह एक प्रेमिका थी।'

**चन्द्रकांता** : बहुत कम शब्दों मे आपने अपने को परिभाषित किया। ज़रूर सुनने वाले प्रभावित हुए होंगे।

**दि. नं. डालमिया** : हुए तो होंगे, क्योंकि उस वक्त महादेवी ब ी आत्मीयता से मुझसे मिलीं। मुझसे कहा, अपने सारे गद्य-काव्य उन्हें भेज दूँ। पढ़ तो वे मुझे पहले भी चुकी थीं। उसके बाद मैंने उन कविताओं को 'शबनम' पुस्तक में प्रकाशित होने पर ही देखा। पुरस्कार के लिए भी पुस्तक उन्होंने ही भेजी थी। वह उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक घोषित की गई थी। रामकुमार वर्मा ने पुस्तक की भूमिका लिखी थी, यह मुझे बाद में मालूम हुआ। मेरे पास प्रशंसकों के पत्र आते थे, अखबारों में नाम छपता था। प्रसन्नता तो होती थी, पर मेरी पृष्ठभूमि उदासीनता की ही थी। किसी की मृत्यु देख कर बीमार हो जाती थी। मन बेहद संवेदनशील था। साहित्यिक माहौल तो ब ा आत्मीय था।

**चन्द्रकांता** : आपके लेखन पर घर-परिवार, उस समय के समाज की क्या प्रतिक्रिया रही? उस समय तो कोई ल की एक पत्र भी लिखती तो शक के घेरे में आती थी।

**दि. नं. डालमिया** : घर में पिता के अतिरिक्त मुझे समझने वाला कोई नहीं था। इतर लोग कहते, पूर्व जन्म में, मैं कोई गोपी रही होऊँगी, या गोपी का हृदय लेकर पैदा हुई हूँ। मेरे पिताजी मुझे बराबर लिखने के लिए प्रोत्साहित करते। समाज की चर्चा की आँच मुझ तक पहुँचने नहीं देते थे।

**चन्द्रकांता** : अपनी प्रिय विधा गद्य-गीत को छो  कविता एवं उपन्यास लिखने के पीछे कौन से कारण या दबाव रहे?

**दि. नं. डालमिया** : एक बार डॉ. पद्मसिंह कमलेश ने मेरा इन्टरव्यू लिया और मुझे सचेत किया कि गद्य-काव्य की विधा अब समाप्तप्राय है। मैं कुछ और लिखने का प्रयास करूँ। मैं तब ब ी निराश हुई क्योंकि गद्य-गीत मेरी प्रिय विधा थी। उनके बहुत आग्रह करने पर मैंने छन्दोबद्ध कविताएँ लिखीं। बाद में उनका भी युग बीत गया। तब आज की कविताएँ लिखने की कोशिश की। समय के साथ काव्य विधाओं में परिवर्तन आए। मैं भी शैली, शिल्प और अभिव्यक्ति के माध्यमों में परिवर्तन लाती रही, अन्य विधाओं को भी अपनाया। चेतन और अर्द्धचेतन के भीतर की कई अंतर्यात्राएँ मैंने कविता, कहानी और उपन्यासों में गूँथ दीं। उपन्यास लिखने के लिए मेरे बच्चों ने भी मेरा हौसला बढ़ाया। दिनकर जी ने मेरे पहले उपन्यास की खूब प्रशंसा की। दरअसल मेरे जीवन और जगत के विविधवर्णी अनुभव एक विधा में अट नहीं पाए, यह भी उपन्यास लिखने का कारण बना। जितना विस्तार उपन्यास के ब े कैनवास पर सम्भव है उतना गद्य-गीत में नहीं।

**चन्द्रकांता** : आप गाँधी और नेहरू से प्रभावित थीं। राजनीति में आकर राष्ट्र की सेवा करना चाहती थीं। नेहरू से आपका पत्र-व्यवहार भी हुआ। उन्होंने आपको लोगों से मिलने की सलाह भी दी और आपने 'दुपहरिया के फूल' काव्य नेहरू को समर्पित किया। फिर अचानक ऐसा क्या हुआ कि अपने परों से आकाश तौलने की इच्छा रखने वाली युवा कवयित्री ने, स्वर्ण जटित किले की कैद और धरती के ऐश्वर्य भोग को चुना? क्या उसने अपनी सीमाएँ आप नहीं बनाईं?

**दि. नं. डालमिया** : देखो कान्ता, मनुष्य जो बनता है, उसे बनाने में, उसके विचार, प्रतिबद्धताएँ और आकांक्षाएँ ही नहीं, दी गई परिस्थितियाँ भी ज़िम्मेदार होती हैं। तेईस-चौबीस वर्ष की उम्र तक, मेरी, विवाह न करने की जिद तो चली, जबकि हमारे राजस्थान में उस समय पन्द्रह-सोलह की उम्र तक ल कियों का विवाह ज़रूरी माना जाता था। पर बाद में, जब मेरी पढ़ाई भी पूरी हुई, मैं समाज में चर्चा का विषय बन गई। इतना कि मेरे माता-पिता की चिन्ताएँ बढ़ती गईं। उन्होंने मुझे समझाया, मनाया। मेरे कारण वो दुखी हों, मैं यह भी नहीं चाहती थी। हालाँकि विवाह के लिए मन

में कोई उत्कंठा नहीं थी, फिर भी मैं परिस्थितियों के दबाव से विवाह के लिए तैयार हो गई। इस बीच डालमिया जी जो मेरे गद्य-गीतों से प्रभावित थे, मेरे पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेज चुके थे। पहली बार तो मैंने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। पर जब दूसरी बार उनका प्रस्ताव आया तो मैंने उस पर विचार किया। घर-परिवार वालों ने डालमिया जी की ब ी उम्र और बहुपत्नीव्रती होने के कारण इस विवाह का विरोध किया, पर मुझे लगा, यह विवाह मानव-मन के अध्ययन का खासा अच्छा विषय रहेगा। मन में प्रश्न भी उठे, कि कई विवाहों के बाद भी वे संतुष्ट क्यों नहीं हैं? सो कुछ मेरा कौतुहल-भाव और कुछ परिस्थितियाँ, इस विवाह के कारण बने। उस वक्त यह नहीं सोचा कि मैं अपनी सीमाएँ आप बना रही हूँ, बल्कि एक चुनौती की तरह ही इस विवाह को स्वीकार किया कि एक धनी-मानी उद्योगपति की इस विवाह श्रृंखला को मैं रोक लूँगी।

**चन्द्रकांता** : यानी कि आपने अपने जीवन के साथ एक एक्सपेरिमेंट किया। शायद यह सोच कर कि जो प्रेम आपकी रग-रग में गीत बन कर गूँज रहा था, उससे उन्हें इतना भर देंगी कि भटकन के लिए कोई गुंजाइश ही न रहे? क्या यह सोच, एक सक्षम पुरुष के अहम् और रीति-नीति से टकराव की स्थिति पैदा करने वाली नहीं थी? एक मध्यवर्गीय परिवार की आत्मसजग ल की ने ऊँची हवेली के भिन्न परिवेश में अपने को कहाँ पाया? क्या हमें बताएँगी कि आपका एक्सपेरिमेंट कहाँ तक सफल हुआ?

**दि. नं. डालमिया** : इस विवाह के पीछे एक चुनौती का भाव ज़रूर था, पर यह भी सच है कि विवाह के नाम पर यह एक समझौता भी था। किसी हद तक प्रयोग भी कह सकते हैं। हम सब जीवन के साथ प्रयोग तो करते ही हैं। उनमें सफलता मिले या न मिले, यह अलग बात है। उस समय की मनःस्थिति के विषय में कह चुकी हूँ। हाँ, यह भी सच है कि सेठ जी की हवेली में आकर मैं थो ी 'नानप्लस' ज़रूर हुई। टाटा, बिरला के बाद डालमिया जी का ब े पूँजीपतियों में तीसरा नाम था। व्यावसायिक रूप से वे सफल थे, कई रूपवती पत्नियाँ थीं, पर फिर भी अतृप्त थे। उनका व्यक्तित्व मुझे विरोधों और विरोधाभासों से पूर्ण लगता। एक तरफ दृढ़ निश्चयी, ब े व्यापार और ब े परिवार को अनुशासन से चलाने की क्षमता रखने वाले, दूसरी ओर सरल और प्रशंसकों पर जरूरत से ज्यादा विश्वास करने वाले ! स्त्री विषयक विचार तो उनके पक्के सामन्ती ही थे। मेरे आने से उनमें कोई खास परिवर्तन नहीं आया। दरअसल मुझे सेठ जी के घर आकर न अपना कर्तव्य समझ में आया, न अपना स्थान ! यहाँ सब कुछ मेरे पिता के घर से अलग था, बल्कि विपरीत था।

**चन्द्रकांता** : क्या आपने सेठ जी तक अपने विचार पहुँचाने की कोशिश की? किसी तरह उन्हें बदलने या कुछ सुझाव देने का प्रयास?

**दि. नं. डालमिया** : पसंद तो उन्होंने मुझे किया था, जितना मान-सम्मान एक पूँजीपति के घर में सम्भव था, वह भी दिया। पर उनकी अन्य पत्नियों एवं कुटुम्बियों के लिए तो मैं एक 'आउट-साइडर' ही थी। पढ़ी-लिखी, कविता लिखनेवाली, जिसकी कद्र बँधे-ढँके संस्कारों-मान्यताओं वाले सम्पन्न मारवा ी परिवारों में नहीं थी, खासकर उद्योगपतियों के घरानों में। वहाँ स्त्री एक वस्तु थी, अनेक सुख साधनों, सम्पन्नताओं की प्रतीक, एक वस्तु भर ! पति को प्रभावित करने या उन्हें कुछ सुझाव देने की बात तो वहाँ होती है जहाँ विचारों का थो ा-बहुत तादात्म्य हो। यहाँ ऐसा नहीं था। विचारों और भाव संवेदन के स्तर पर हम दो अलग-अलग ध्रुवों पर ख े थे। मैंने उन्हें राजनीति की तरफ थो ा प्रेरित जरूर किया, कुछ पत्रिकाएँ भी निकालीं, पर यहाँ भी वे चापलूसों से घिरे रहे। एक ब े उद्योगपति और बुद्धिजीवी होने के साथ, वे थो े कान के कच्चे भी थे। राजनीतिक और व्यावसायिक स्तर पर आये संकटों, मुकद्दमों को झेलने का अदम्य साहस था। महत्वाकांक्षाएँ उन्हें बेहद व्यस्त रखतीं, एक भ्रामक सम्पूर्णता का भाव उन्हें स्त्री मन को समझने नहीं देता था। रोमांस की वहाँ गुंजाइश ही नहीं थी। ऐसे में मेरी संवेदनशीलता कुंद हो गई। एक अदृश्य दीवार थी हमारे मनों के बीच, कि मैं उनके अन्तर को छू नहीं सकती थी। मैं उनके आदेश-उपदेश सुनती। उनके उत्थान-पतन में उनके करीब आना चाहती, पर वे हर स्थिति में सामान्य बने रहते। उनके बनाये वातावरण में जीती, मैं विचित्र से भय से घिरी रहती और एकाकी महसूस करती। एक बँटे हुए पति के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं था। मैंने अपने उपन्यास, 'मुझे माफ करना' व अन्य आत्मकथात्मक उपन्यासों में अपना जिया-भोगा जीवन दर्ज कर दिया है।

**चन्द्रकांता** : आपका अपने पति से, तमाम प्रेम और श्रद्धा के बावज़ूद विचारों के स्तर पर भिन्नता और शायद विरोध भी रहा। ऐसे में आपकी प्रतिक्रिया क्या रहती थी? एक पत्नी और माँ के रूप में आप अपने को कितनी सफल पाती हैं?

**दि. नं. डालमिया** : मैं कई जगह कह चुकी हूँ कि मैं न एक सफल पत्नी बन पाई और न बच्चों के लिए ही कुछ विशेष कर पाई। कई पत्नियों में बँटे पति की प्रतीक्षा में जीवन एक जागती हुई रात बन गया। उनके आदर्शों के अनुरूप स्वयं को ढाल नहीं सकी क्योंकि मैं समझ ही नहीं सकी कि वे मुझसे क्या चाहते हैं। वे सीता-सावित्री, सती अनुसुइया के उदाहरण देते, उनकी पवित्रता और त्याग की बात करते, मैं मन ही मन आहत होती। काश, मैं समझा पाती कि सीता का विरोध, सत्यवान-सावित्री का प्रगाढ़ प्रेम ! वे तर्क सुनने को तैयार नहीं थे। व्यवहार में नम्र थे पर स्वयं को सर्वज्ञ भी मानते थे, 'हम ईसा से भी क्षमाशील हैं देवी।' 'पति, कैसा भी हो पत्नी उसका अपमान करे तो उसे नर्क की यातना भोगनी प ती है।' वे जब ऐसे वाक्य बोलते, तो मेरे सोचे हुए मधुर क्षण व्यर्थ हो जाते। मैं खुद को उनके अनुरूप ढालने की कोशिश भी करती, अपने अन्दर छाए वसन्त को समेटने की कोशिश करती। लेकिन पति के स्नेह में हिस्सेदारी खटकती। इसे स्त्री सुलभ ईर्ष्या कह सकती हो। हर स्त्री पति पर एकछत्र अधिकार चाहती है, मेरे पास देने को बहुत था पर लेने वाला इस सबसे बेखबर था। मैं कुंठित हो गई। पर मैंने खुद को ओछा नहीं होने दिया। धीरे-धीरे अन्तर्जगत में लौट आई। कविताओं में अपनी व्यथा-कथा व्यक्त करने लगी। ब` घर के प्रपंच, बहुपत्नियों की विडम्बनाएँ, आकांक्षाएँ, उपेक्षाएँ, राग-द्वेष सब देखे-झेले। बल्कि अपना नाम यश भी पति की देहरी पर चढ़ा दिया। अपने कर्तव्य निभाए, माँ बनी, मातृत्व जागा पर वात्सल्य की धाराएँ निसृत नहीं हुईं। बच्चों को मैंने अपना दूध नहीं पिलाया। मेरा मन बेहद उद्वेलित रहता था और मैं बच्चों को निराशात्मक छायाओं से दूर रखना चाहती थी। मेरा ममत्व उनके लिए था, देख-रेख भी करती थी पर अधिकांश समय वे दाइयों-नौकरों की हिफाज़त में रहते। गृहस्थी के कामों में मेरी रुचि नहीं थी, गृहणी का रोल भी ठीक से नहीं निभा। बस सब गुज़रता गया। माँ के रूप में कितनी सफल रही, नहीं जानती, पर मेरे बच्चे संस्कारवान हैं। अपनी बनाई लीकों पे चलते हुए स्नेह-सूत्रों से बँधे हैं। मेरे संघर्ष काल में मेरे बच्चों और मेरे भाइयों ने हमेशा मेरा साथ दिया है। बहू ने तो प्यार से बाँधा और घर के उत्तरदायित्वों से मुक्त कर दिया, जिससे मैं लेखन कर्म करने का समय पा सकी।

**चन्द्रकांता** : औद्योगिक घराने में रह कर धन को आप कितना महत्व देती हैं? क्या आप मानती हैं कि धन से सभी सुख खरीदे जा सके हैं?

**दि. नं. डालमिया** : कांता, आज के युग में जीने के लिए धन की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। अभावों में मैंने कभी जीना नहीं चाहा। पर यह भी सच है कि धन की अपनी सीमाएँ हैं। वह मनुष्य के मन की शांति नहीं खरीद सकता। मैंने धन को उतना ही महत्व दिया, जितना वह व्यक्ति को स्वाभिमान से जीने में सहायक होता है। दूसरों के आगे हाथ फैलाने की नौबत नहीं आनी चाहिए, इससे न केवल व्यक्ति के समुचित विकास की सम्भावनाएँ ख़त्म होती हैं, बल्कि साहित्य सृज़न-प्रकाशन में भी बाधाएँ आती हैं।

**चन्द्रकांता** : आपकी पहली-पहली कृतियों 'शबनम', 'मौक्तिक माल', 'दुपहरिया के फूल', 'वंशीरव' आदि में जीवन का उल्लास है। प्रकृति-प्रेम-सौन्दर्य-दर्शन सभी एक विराट राग में गुँथे हैं पर 'शर्वरी' तक आते-आते उनमें, (आपके ही शब्दों में) 'अन्यमनस्कता' आई है। इसके कारण क्या रहे होंगे?

**दि. नं. डालमिया** : कारण तो मेरे जीवन की बदली हुई परिस्थितियों में ही थे। 'शबनम' के समय में मैं खुलती हुई पुस्तक के प्रथम पृष्ठ की तरह थी। हँसी-खुशी भरे वसंत और खिलती कलियों जैसे विचार थे। मेरा समय मेरे अधिकार में था। पर विवाह के बाद, स्थितियाँ बहुत बदल गईं। इतनी कि मैंने कल्पना भी नहीं की थी। मैं परवश-सी हो गई थी। चलती थी - पर चाल मेरी नहीं थी। होंठ हिलते थे, पर वाणी दूसरे की होती थी। मुझे एक दिन भी न लगा कि यह विशालकाय घर मेरा है। ब ा व्यापार, सपत्नियाँ, सामन्ती परिवेश और पति की उपेक्षा, घरेलू प्रपंच आदि के बीच मेरा महत्वाकांक्षी उन्मुक्त मन, उन परिस्थितियों से सामन्जस्य स्थापित नहीं कर सका। मैं अपनी ही आत्मा से, हर पल पूछे जाने वाले प्रश्नों से बिंधी रहती। शायद मन ही मन अपने निर्णय पर भी क्षुब्ध रहती। मैं कोशिश करने पर भी निकट नहीं जा पाई। पहले अर्जित किया यश उन दीवारों में मिट्टी हुआ जा

रहा था। धन-वैभव मेरे एकाकीपन के आगे मिट्टी लगने लगा था। हर चीज़ अधूरी, अपूर्ण लगती, न विगत भूल पाती थी न वर्तमान सधता था। ऐसी स्थिति में, सांसारिक मायाजाल में फँसी अन्यमनस्क हो गई थी। लेखन ही मेरी शरण-स्थली थी। उसी में अन्तर्मन को उ`लती थी। तो जैसी, स्थितियाँ थीं, वैसा ही प्रतिबिम्ब साहित्य में होगा। मेरा लेखन तो जिया हुआ सच ही है।

**चन्द्रकांता** : हवेली की ऊँची दीवारों, अनुशासनों, प्रपंचों, वसीयतों-मुकद्दमों व धन के बँटवारे में धाँधलियों और सबसे ऊपर उपेक्षा और एकाकीपन, के घुटन परिवेश में रहकर भी आप सृजनरत रहीं। वैसे परिवेश में तो कोई भी कल्पनाशील, प्रेमिल स्त्री या तो भीतर ही भीतर घुट जाती या समझौते पर दिमाग के डिब्बे को बंद कर ऐश्वर्य भोग में रम जाती। परन्तु आपने अपनी जीवनी शक्ति और सोच को धार देकर, अपने भीतर के रचनाकार को जिन्दा रखा। एक बँधे-ढँके समाज में, जहाँ घर की बात बाहर पहुँचाना अपराध समझा जाता था, आपने चार आत्मकथात्मक उपन्यास लिख कर, न केवल अपने अनुभूत यथार्थ को ही स्वर दिया, बल्कि हवेलियों की लौह दीवारों में कैद, स्त्रियों की विडम्बनाओं और अगले को ध्वस्त करने वाले सामंती अंह की परिणतियों को भी परीक्षित-विश्लेषित किया। यह सब लिखने के लिए अपने आप को कैसे तैयार किया?

**दि. नं. डालमिया** : मेरे लिए भी स्थितियों से पर्दा उठाकर निजी सच सार्वजनिक बनाना आसान नहीं था। इसके लिए मैंने अपने मन को मज़बूत कर लिया कि कहानी में भोगा यथार्थ ही लिखना है। स्वयं को भी मुक्त करना है और इस बहाने पूरे स्त्री वर्ग की स्थितियों-परिस्थितियों, उनके घात-प्रतिघात से उपजे द्वन्द्व-तनाव और प्रश्नों को समाज के सामने उजागर करना है।

**चन्द्रकांता** : 'मुझे माफ करना', 'कंदील का धुआँ', 'आहों की बैसाखियाँ', और 'और सूरज डूब गया', ये एक ही कथा के चार खण्ड हैं। इनमें आपका जीवन गुँथा हुआ है, इन्हें आपने आत्म-कथा न कह कर, आत्म-कथात्मक उपन्यास क्यों कहा?

**दि. नं. डालमिया** : 'आत्म-कथात्मक उपन्यास' लिखते समय लेखक भोगे हुए सत्य को ईमानदारी से पाठकों के सामने तो रखता ही है, साथ ही किसी व्यक्ति विशेष के प्रति कटुता या द्वेष-भाव नहीं, क्योंकि यहाँ जीवित व्यक्ति उपन्यास के पात्र बन कर, पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे अपनी व्यक्तिगत संज्ञा के ऊपर उठ कर सामाजिक प्रश्नों से जु  जाते हैं। 'छिपाव-दुराव' की नीतियाँ अपनाने की जरूरत नहीं प ती।

**चन्द्रकांता** : इन चार आत्म-कथात्मक उपन्यासों के विषय में आपने लिखा है कि 'मैं इन उपन्यासों के माध्यम से नायक के जीवन के अर्थ और अस्तित्व की खोज करना चाहती हूँ', जबकि इनमें सामंती समाज की रूढ़ नैतिकता और हदबन्दियों में जीती स्त्रियों की व्यथा-कथा बेहद मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। इस पर कुछ कहें।

**दि. नं. डालमिया** : हाँ, यह सही है कि उपन्यास मैंने नायक के विविध रूप, स्वाभाव व उनके जीवन में आई चुनौतियों को समझने के लिए लिखे। मैं एक बहुआयामी व्यक्ति के चरित्र और जीवन के विरोधाभासों का विश्लेषण-परीक्षण कर उनके जीवन-दर्शन को समझना चाहती थी। ज़ाहिर है उनसे जु ी स्त्रियों के सुख-दुखों की प ताल भी होनी ज़रूरी थी। उन स्त्रियों में मैं भी एक थी, जिसने धुएँ को पीकर आग को जिन्दा रखा और अपने आप को अँधेरे में डूबने से बचाया। अपनी ना ियों में खुभे हुए काँटों को निकाल कर, एक लम्बी नींद लेने की प्रक्रिया है मेरा लेखन। लेकिन अपनी गाथा के माध्यम से, समाज में स्त्री की जगह, उसके वजूद का भी आकलन किया है मैंने। जहाँ नायक के गुणों, उनके धैर्य और दृढ़-संकल्प की प्रशंसा की, वहाँ उनकी कमियों को भी नज़र-अन्दाज़ नहीं किया। बहु विवाह-प्रथा की मैंने भर्त्सना की। उनकी स्त्री-विषयक विचारधारा, कि 'हमारे संग तुम पवित्र हो गई हो', जैसे वाक्यों का विरोध भी किया है। यह भी पात्रों के माध्यम से स्पष्ट किया है कि स्त्री के लिए पैसा ही अंतिम सत्य नहीं है। वह अपने पति से प्रेम, विश्वास और अंतरंगता की हकदार है और उसकी अपनी एक निजी पहचान है। वह सामान की गठरी जैसी बेज़ान वस्तु नहीं, कि उसे जिस तरह उठाओ, बिठाओ, कोई फ़र्क नहीं प ता। यह भी कहने की कोशिश की है कि धनवान की नीतियों में कोई आत्मभावना नहीं होती। वहाँ औरत सदैव भय में जीती है। नारी का इस्तेमाल ही होता है वहाँ, चाहे संतति के लिए या अपनी आत्म-तृप्ति के लिए।

**चन्द्रकांता** : आत्म-कथात्मक उपन्यासों के बाद आपने 'फूल का दर्द', 'आँख मिचौली' और 'मरजीवा' आदि उपन्यास लिखे। इनमें आप स्वयं से बाहर आकर, उस स्त्री समाज से तादात्म्य करने

लगी हैं जिसमें बंधनों, जक नों से मुक्ति की छटपटाहट ही नहीं, अदम्य साहस भी है। आँख मिचौली की रेणु को, आपके ही शब्दों में कहूँ तो, 'अपनी ही ज़िद और अपनी जैसी दुनिया बनाने का भूत सवार था', वह समाज के बने-बनाये ढाँचे को तो ना चाहती है। विवाह और सेक्स के बारे में उसके विचार नारी मुक्तिवादी स्त्री-विमर्श की हिमायतियों को पीछे छो  देते हैं। 'प्रेम एक मुक्त निर्झर है विवाह एक अँधा कुआँ, जिसमें छलाँग लगा कर व्यक्ति कुएँ का मेढ़क बन कर रह जाता है', जैसे वाक्य जर्मन ग्रीयर और सीमोन द बोआर के विचारों से मेल खाते हैं। 'मरजीवा' की यामना में सामंती परिवार की तानाशाहियों से ल ने और अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने का साहस है। वह अपनी माँ से भी कहती है 'माँ, तुम दूसरों से डरो मत, भयमुक्त हो जाओ।' क्या इन पात्रों के माध्यम से, आप पुरुष वर्चस्व की अतियों और सामाजिक जक नों का विरोध करना चाहती हैं, या कुछ और कहना चाहती हैं?

**दि. नं. डालमिया** : देखो कांता, यह उपन्यास लिखते समय मैंने यह नहीं सोचा कि इन उपन्यासों के माध्यम से अपनी कोई भीतरी रिक्ति भरना चाहती हूँ या पुरुष वर्चस्व को कोई चुनौती दे रही हूँ। इस कहानी को लिखते जरूर कुछ प्रश्न मन में थे, जिनके उत्तर तलाश रही थी। नारी सदियों तक पुरुष की आक्रामकता सहती आई है। सहिष्णुता, शील, संतोष और त्याग का परिचय देती आई है। पर अब उसकी मूकता समाप्त हो गई है और वह विरोधी स्वर उठाने लगी है। यह सब स्वाभाविक है। लेकिन यह भी सच है कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। पुरुष को स्त्री के अस्तित्व को अंगीकार कर लेना चाहिए। उस पर मालिकाना अधिकार न रख कर उसे मित्र और मार्गदर्शी का दर्जा देना चाहिए। उसकी बुद्धि कई अर्थों में, कई अवसरों पर पुरुष से अधिक तीव्र होती है। मातृत्व तो उसे धैर्य की प्रतिमूर्ति बना देता है। उसका अधूरापन, घर हो या बाहर, सभी जगह समस्याएँ पैदा करता है। दोनों के जीवन में एक-दूसरे को उसका दाय देकर जीवन में सामन्जस्य स्थापित करना है। यही सब बातें कहने की कोशिश की गई है।

**चन्द्रकांता** : अच्छा दीदी, आप एक लम्बे समय से सृजन कर रही हैं। इस बीच साहित्य में कई प्रवृत्तियाँ, कई विधाओं, वादों ने जन्म लिया, विशेष खाँचों में बाँध कर कविता कहानी लिखी गई। अस्तित्ववाद, प्रयोगवाद, नई कहानी, अकहानी, समान्तर कहानी आदि से होते हुए आज साहित्य पर उत्तर आधुनिकता और भूमंडलीकरण छा गया है। साहित्य में इस सब का क्या महत्व है और इसी तेजी से बदलते दौर में हमारे सामने कौन-सी चुनौतियाँ हैं? साहित्य पर मीडिया के प्रभाव पर आपके विचार क्या हैं?

**दि. नं. डालमिया** : जब से मैंने लेखन शुरू किया, तब से समय के साथ प्रवृत्तियाँ बदलीं। साहित्य का बाह्य कलेवर, अभिव्यक्ति की शैलियाँ, शिल्प-विधाएँ बदलीं। साहित्य पर कभी कामू, काफ्का और सार्त्र छा गए, कभी गिन्सबर्गा, आज उत्तर आधुनिकता है, पर लेखन अपनी निबधि गति से चलता रहा। समय अपने साथ नई चुनौतियाँ लाता है और रचनाकार स्थितियों-पात्रों को केन्द्र में रख कर उनसे रू-ब-रू होता है। प्रश्न करता है, विरोधी ! जो भी रचनाकार वादों को मद्देनज़र रख कर रचना करता है वह उस वाद का पैम्फलेट भले बनें, रचना नहीं बनती। रचना के मूल में रचनाकार का स्वानुभूत यथार्थ ही होता है। चाहे वह उसका अपना भोगा हुआ हो या तहेदिल से महसूस किया हो। हमारे सामने आज सबसे ब ा संकट तो हमारी नष्ट होती मूल्य व्यवस्था और पश्चिम का अंधानुकरण है। भूमंडलीकरण ने विश्व को करीब लाकर हमें एक ब ी बिरादरी का हिस्सा बनाया, पर इसमें हम अपनी सांस्कृतिक पहचान खोने लगे हैं। बाज़ारवाद ने हमें अपना गुलाम बना लिया है। उपभोक्तावादी तंत्र स्त्री का स्वतंत्रता के नाम पर, उसका उपयोग ही कर रहा है।

मीडिया, इंटरनेट ने हमारे लिए ज्ञान के द्वार खोल दिए, पर हमारी संवेदनाओं को कुंद भी कर दिया। हमारा समय चुनौतियों का ही समय है। चाहे वह स्त्री के अधिकारों से जु ी हों, वर्ग-वर्ण से जु ी हों, दलितो-शोषितों की हों या बढ़ती हुई साम्प्रदायिक शक्तियों की, हमें भारतीय दर्शन में ही इनके समाधान ढूँढने होंगे, क्योंकि हमारी भारतीय अवधारणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा है। हमारी सहिष्णुता एकता का सूत्र है। हर धर्म के अनुयायियों को समान रूप से फलने-फूलने की स्वतंत्रता हमारे दर्शन में है। हमें उसे सही ढंग से परिभाषित करना होगा। पश्चिम का अंधानुकरण छो  कर अपने समाज की समस्याओं को देखना समझना होगा। सामाजिक यथार्थ को महसूस कर हम जो

भी लिखते हैं, वही प्रामाणिक होता है, उसी के बीच से साहित्य जन्म लेता है और चुनौतियों का सामना करने का साहस भी जुटाता है। शेष सब वक्ती बातें हैं।

**चन्द्रकांता** : तब के साहित्य संसार और आज के सहित्य जगत में आप क्या अंतर पाती हैं? पुरस्कारों की नीति और समीक्षा के विषय में आपकी राय?

**दि. नं. डालमिया** : अन्तर तो समय और व्यक्ति में आता है, साहित्य तो मनुष्य के सुख-दुख से, चिरकाल से जु ा आया है। मेरे शुरुआती लेखन के समय, ब` रचनाकार नए रचनाकारों को प्रोत्साहित करते थे। किसी में रचनात्मकता नज़र आती तो उसे पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी करते और पुरस्कारों से भी नवाज़ते। आज पार्टीबाजी, गिरोहबंदी और भाई-भतीजावाद साहित्य को भी ग्रस रहा है। अच्छी रचनाएँ, यों देर-सवेर अपना दाय पाती हैं पर अक्सर साहित्य की राजनीति करने वाले अपने सम्बन्धों को भुनाते नज़र आते हैं। पुरस्कार बहुत हो गए हैं, पर यहाँ की कोई नीतिस्पष्ट नहीं है। समीक्षा का हाल तो और भी ख़राब है। कुछ ही समीक्षक रचना पढ़ कर उसकी व्याख्या करते हैं, अधिकांश समीक्षा के नाम पर खानापूर्ति ही करते नज़र आते हैं।

**चन्द्रकांता** : आपने अपने विपुल लेखन में स्वानुभूत के साथ, सम्बन्धों की आइरनी, पीढ़ियों के अंतराल, आइडेंटिटी क्राइसिस आदि पर कई उपन्यास लिखे। स्त्री-विमर्श से जु ी 'आँख मिचौली', 'मरजीवा' जैसी सशक्त रचनाएँ लिखीं। स्त्री के, भयमुक्ति के प्रयास भी आपके साहित्य में दर्ज हैं। क्या कारण है कि सुधी समीक्षकों का ध्यान इन उपन्यासों की ओर नहीं गया? यहाँ तक कि स्त्री-मुक्ति के झंडाबरदारों का भी नहीं? आपकी प्रतिक्रिया?

**दि. नं. डालमिया** : मैंने समय और समाज की विरूपताओं-विडम्बनाओं को गहराई से महसूस किया है। भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अशिक्षा, स्त्री के प्रति अभी भी दोयम दर्जे की नागरिक होने का भाव पुरुष समाज में व्याप्त है। केवल कानून नहीं, सामाजिक चेतना इसे बदल सकती है। स्त्री में मैंने अनन्त सम्भावनाएँ देखी हैं। वह घर-परिवार ही नहीं, राष्ट्र की धुरी है। उसे उचित अधिकार और स्वतंत्रता देनी होगी। वह स्वयं को प्रमाणित करना चाहती है। समीक्षकों, स्त्री के झंडाबरदारों की राजनीतियों से मैं विचलित नहीं होती। वह उनकी समस्या है। लेखन खरा हो तो समीक्षा की ज़रूरत नहीं, पाठक उसका महत्व समझता है और उससे प्रभावित भी होता है।

**चन्द्रकांता** : गद्य-गीतों की प्रेमिल नायिका, राधा और मीरा जैसी प्रेम दीवानी, सृजन की लम्बी बीथियों से गुज़रती, सामाजिक विषमताओं, भूख, दारिद्र्य और वैश्विक चिन्ताओं से जु गई। अनेक कथा-कृतियाँ, काव्य-पुस्तकें और दर्जनों उपन्यास रचे, जिनकी भाषा-शैली का वैविध्य, परिष्कार संवर्धन सचमुच चौंकाने वाला है। 'शबनम' और 'अब मैं नाचूँ नहीं गोपाल' लगता नहीं एक ही रचनाकार की कृतियाँ हैं। इस भाषिक वैविध्य के लिए आपको प्रेरणा कहाँ से मिली?

**दि. नं. डालमिया** : कान्ता, हर विषय, हर भाव संवेदन अपनी अभिव्यक्ति के लिए विशेष भाषा शिल्प चाहता है, बल्कि परिवेश, प्रकृति, स्थितियाँ और पात्र अपनी भिन्नताओं के कारण अभिव्यक्ति को भी इन्द्रधनुषी रंग देते हैं, कहीं कोमल शब्दावली, कहीं खाँटी खुरदुरी भाषा, कहीं लोक-संस्कृति के रंग में पगी भाषा। रचनाकार तो पात्रों की मनःस्थिति के पीछे चलता है। वही उसे प्रेरित करता है।

**चन्द्रकांता** : अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में कुछ कहें।

**दि. नं. डालमिया** : रचना प्रक्रिया ब ी जटिल प्रक्रिया है। इसकी शुरुआत तो हमारे अवचेतन में किसी नामालूम क्षण में ही होती है। जीवन में जिया-भोगा जब अभिव्यक्त होने के लिए कागज़ पर उतरता है, तब वह हमारे अनुशासन में नहीं अटता, बल्कि उस रचनात्मक तनाव से गुज़रते हुए हम उस क्षण का इंतज़ार करते हैं जब वह रचना का रूप लेकर हमें तनावमुक्त करे। यों जब हमारे हाथ में कलम होती है और मस्तिष्क में भावों और विचारों का आवेग, वही मेरा सर्जनात्मक क्षण होता है। तब लेखनी एक प्रवाह में बहती है लेकिन ऐसे क्षण बीच-बीच में ही आते हैं, कभी-कभी तो लम्बे अंतराल के बाद।

**चन्द्रकांता** : आपने कहा है कि स्वांतःसुखाय लेखन करती हूँ, पर आप ब` स्त्री समाज की मुक्ति के लिए भी बेचैन दिखती हैं। बल्कि शोषित दलित के लिए भी आप चिन्तित नज़र आती हैं। आप कहती भी हैं, 'मैं रोज ही गाती हूँ। उन अजन्मे बच्चों के लिए/जिन्हें कोखों की तलाश है/ नाबालिग बच्चों के लिए/जो हिंसक पशुओं के नाखूनों से नोची गई हैं/ज़िन्दगी और समाज से

निर्वासित।' एक तरफ स्वांतःसुखाय, दूसरी ओर गहन सामाजिक सरोकार। क्या कहीं विरोधाभास नज़र नहीं आता?

**दि. नं. डालमिया** : मेरा लेखन मेरे जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों के ताप से तपा है। प्रेम इसकी धुरी है। वह प्रेम, जो अपने उदात्त रूप में पूरे विश्व को एक घेरे में ले आता है। मैंने प्रेम और मुक्ति के स्वप्न देखे हैं, वे मेरे लिए भी हैं और एक ब ` समाज के लिए भी। उसमें मेरे दुःख के साथ सभी वंचितों दलितों के दुःख जु ` हैं। यों तुलसीदास ने भी रघुनाथ गाथा स्वांतःसुखाय लिखी थी पर वह गाथा ब ` पाठक-वर्ग की गाथा बन गई थी। फिर व्यक्ति समाज की एक इकाई है, उससे अलग नहीं। मैं समाज के सरोकारों से अलग कैसे हो सकती हूँ? एक लेखक के रूप में तो मैं, पूरी मानवीयता के प्रति प्रतिबद्ध हूँ।

**चन्द्रकांता** : यदि एक बार फिर जीवन मिले तो उसे किस रूप में जीना चाहेंगी?

**दि. नं. डालमिया** : जीवन दुबारा मिले या न मिले, इसके विषय में कोई नहीं जानता। यों तो जिन अजानी त्रासदियों का सामना मुझे करना प ा है, उन्हें देखूँ तो शायद जन्म लेना ही नहीं चाहूँगी। फिर भी यदि ऐसा हुआ तो मैं अपनी व्यावहारिक और मानसिक भूलों को सुधारने के लिए दिनेशनंदिनी बन कर ही जीना चाहूँगी, कोरे काग़ज़ पर नई इबारत लिखूँगी। इस जीवन के एडवेंचरों से दूर रह कर, केवल अपनी तरह जीकर अपनी ही व्याख्या करूँगी। शांति और सुकून की राह पर चलूँगी। सभी पृष्ठ अब तक मैंने दूसरों के लिए खोले हैं, अब एक पृष्ठ अपने लिए भी रखूँगी। निश्छल स्थिति में रह कर पूर्णविराम तक पहुँचने के साधन जुटाऊँगी। इस जीवन में जो न कर पाई, उसे करने का प्रयास करूँगी। शायद राजनीति में जाकर आतंक, लूट-पाट और बलात्कार ग्रस्त देश की मुक्ति के लिए कुछ काम करना चाहूँ। इस जीवन में जो स्वप्न राख हो गए उन्हें सच तक ले जाने में, इस जन्म की असफलताओं, विवादों से मुक्ति पाऊँ। स्त्री रूप में इस जन्म में असहाय और कमज़ोर रही, तब साहस से जीना चाहूँगी। जीवन को अर्थ देने की कोशिश करूँगी।

**चन्द्रकांता** : दीदी, हमें तो नहीं लगता कि आप इस जीवन में साहसहीन रही हैं। ऐसा होता तो आप अपने आत्म-कथात्मक उपन्यासों में सामंती समाज को अनावृत्त कर लेतीं ! जब, 'मुझे माफ करना' उपन्यास डालमिया जी ने नष्ट करवा दिया, उसे आपने दोबारा प्रकाशित करवा कर अपने साहस और दृढ़ निश्चय का ही उदाहरण दिया है। आपने तमाम विपरीत परिस्थितियों में अपने लेखन को जिन्दा रखा और समय के सरोकारों से जु ी रहीं। 'ऋचा' संस्था बना कर तो आपने अपने इर्द-गिर्द एक खूबसूरत साहित्यिक माहौल बनाया है, जिसमें नई रचनाकारों को आप बराबर लेखन के लिए प्रोत्साहित करती हैं। जीवन को तो सार्थक कर ही दिया है। हमारे लिए भी प्रेरणा का स्त्रोत हैं आप। अब बताइए, आगे क्या लिखने का इरादा रखती हैं?

**दि. नं. डालमिया** : अपनी आत्म-कथा शुरू कर ली है।

**चन्द्रकांता** : यानी कि आत्म-कथात्मक उपन्यासों में कुछ अनकहा रह गया था।

**दि. नं. डालमिया** : मैंने कहा न, साहस की कमी रही क्योंकि मुझे लगता है अभी भी बहुत से सच हैं, जिन्हें कहना होगा। वह मेरे ही नहीं औरों के भी हैं, जिन्हें रुष्ट न करने के लिए मैं अनकहा रख गई थी, अब (सत्यों को) उजागर करना चाहती हूँ, जिन्हें मैंने भोगा है ताकि मैं जब इस दुनिया से विदा लूँ तो एकदम साफ और खाली रहूँ। मुक्त हो जाऊँ तमाम भय से; विषादों, अपूर्णताओं से।

**खोया हुआ गीत**

**दिनेशनन्दिनी डालमिया**

**किसी खोये हुए गीत की खोज में मैंने समस्त प्राण-शक्ति लगा दी - कल्पना के प्रकाश चीरों से दिग्वधुओं को सजाया, 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक की वर्णमाला से असंख्य शब्दों, श्लोकों, सूत्रों, काव्य और महाकाव्यों को छंदों में बाँधा, उन्हें रसों की तरलता से तन्द्रिल किया। पर वह अनोखा गीत जो ओठों पर आने के पूर्व ही भावों की श्रृंखलाओं को तो  मुक्त हो गया, आज तक पक  में नहीं आया। खोये हुए उस गीत को पुनः जो ने में जीवन गया, न जाने कितने भावी जीवन और जाएँगे, खोये हुए गीत की खोज में।....**

# लिखना मेरे बेटे

विजय सिंह नाहटा

लिखना मेरे बेटे -
अपने अंतस् का अनुराग उ`ल कर
अपनी सर्पीली मगर निश्छल हस्तलिपि में मुझे कोई ख़त।
पहले तुम्हारा ख़त मिला था
तुम्हारे प्यार की भीनी-भीनी गंध से सराबोर
मैं सूँघता था उसे गोया चूम रहा हूँ तुम्हारा गोरा ललाट।
उसमें लिखे हर हरफ़ देखता था मैं कुतुहल की तरह
अपने अँगूठे की पोर से रग ता था वह जगह
जहाँ-जहाँ से गुजरा होगा तुम्हारे हाथ का मंजुल-स्पर्श।
मुझे तुम्हारा ख़त पढ़ते समय घर की उस
अबाबील का भी ख़याल आता रहा जो
टुकुर-टुकुर ताकती रही होगी यह ख़त।
पहले तुम ख़त में
वासंती भोर, मौसम के मिज़ाज़, गाँव के विहंगम हाल-चाल,
पास-प ेस की असामयिक मौतें, ब`-बुजुर्गों की सेहत,
घर-परिवार के आगत मांगलिक काम, माँ की नसवार,
चिन्नू की फ़रमाइश, खेतों में ख ी फसलों की संभावनाएँ
सभी का ज़िक्र करते थे, सभी का कुशल-क्षेम बताते थे
मेरे हर दुःख-सुख पूछते और यह भी कि जल्दी घर कब आओगे?
प्रत्युत्तर में तुम्हें नसीहतें सौंपता था मैं
मेरे बेटे ! निगाहदास्ती रखना घर की, बूढ़ी दादी-अम्मा की,
शाम ढलते लौट आना घर की देहरी पर।
तुम्हारे ख़त से मुझे मिट्टी की सौंधी-भीनी
महक आती थी हवा में तैरती-सी
वो गायों के रुन-झुन स्वर, मकई की फुनगियाँ
सरसों के हरे-पीले खेतों के मनोरम दृश्य
पूस में खुजलाती घर की कुतिया, उसके ठिठुरते पिल्ले,
गोधूलि के वक्त सुदूर पहा ी का मंदिर, आरती के संगीतमय स्वर
मस्जिद की अजान, गिरजे की जलती हुई मोमबत्ती का हर पल पिघलना
खेत-खलिहान, चौपाल, गाँव का खंडहरनुमा स्कूल
बीच-बाजार में बैठा कोई तमाशबीन-बाजीगर या फिर चचिया की कोल्हू का अविराम स्वर।
तुम अविरल ख़त लिखना मेरे आत्मज
ख़त में समाई छटपटाहट, आदरांजलि औ'
संवेदनाओं का एक सतत निर्झर जो तुम्हारे ख़त से बहता प्रतिपल
औ' मैं स्मृति के किसी पुल पर ख ा ताकता रहता तुम्हारे स्नेहिल स्पर्श का प्रवाह
इस सुदूर भू-खण्ड में मातृभूमि से दूर, बहुत दूर,
मैं ताकता हूँ तुम्हारा ख़त आलौकिक नक्षत्रों के आर-पार से।
मशीनी भागम-भाग, सब कुछ लीलने को आतुर ख ी एक अजनबी चकाचौंध
कल्पनाओं से भी तेज भागते मोबाइल, इंटरनेट, ई-मेल, ई-फैक्स के इस निर्मम होते समय में
जब खून ठंडा होकर जम गया है ज़माने की शिराओं में
मैं तुम्हारे ख़त में तलाशता हूँ मानवता की बची-खुची खुशी,
संवेदनाओं के खंडहर या अनुराग के जीवाश्म।
सब कुछ है मेरे बेटे मेरे पास
फिर भी एक रीते महासागर की तरह हूँ जहाँ खुशियाँ किनारे पर प ी फेन-राशि-सी हैं।
अब मुझे तय करना है,
सारी दुनियाँ, ये दौलत के बहते निर्झर,
सब चाहे ले ले मुझसे मेरे ईश्वर....

**बस रहने दे मेरे सिरहाने तुम्हारे दो-चार ख़त....।**

# ये कैसा अपराध !

**सुधा गोयल**

राजकुमारी सुकन्या पालकी के चारों ओर टँगे पर्दों को बार-बार उठाकर बाहर देखती। उसका कौतुहल था कि समाप्त होने को न आ रहा था। अपने जन्म से यौवन की सीढ़ी चढ़ने तक उसने महज़ राजभवन, राजोद्यान, मखमल के गद्दे व राजसी वैभव के अलावा कुछ नहीं देखा था।

ऊँचे-ऊचे पहा , पहा ों की गोद से दुग्ध-धवल-से झरते झरने, पे -पौधे, तरह-तरह के पुष्प, घुम ते मेघ, खुला आकाश, धूल-भरी स कें, पशु-पक्षी, नदी का मनोरम किनारा, छल-छल बहता जल और मुनियों के ब े-ब े आश्रम देख कर वह चहक रही है। अहा, कितना सुखद, कितना आह्लादकारी है। आँखों ही आँखों में प्राकृतिक सुषमा को बटोरती हुई सुकन्या का मन होता कि पालकी से उतर जाये और स्वयं पैदल हरियाली पर चल कर इस प्रकृति का आनंद लूटे।

लेकिन पिता महाराज शर्याति इसे कभी सहन नहीं केरेंगे कि उनकी पुत्री राजकुमारी सुकन्या साधारण सैनिकों और भृत्यों के साथ पैदल चले। महाराज के स्वाभाव से वह भलीभाँति परिचित है, तभी महज़ सखियों के साथ हँस-बोलकर आनंदित हो रही है। पिता के साथ तीर्थाटन को आना कितना सुखकर है।

तभी अचानक महाराज शर्याति की आज्ञा से क़ाफिला रुका। प ाव डाला गया। नर्मदा नदी का जल झल-मल करता बह रहा था। नदी के किनारे फलदार-छायादार वृक्ष लगे थे। हरी-हरी मखमली दूब दूर-दूर तक फैली थी। घो ों, खच्चरों तथा हाथियों के लिए यहाँ पर्याप्ति खाद्य-सामग्री प्रकृति ने ही उपलब्ध करा रखी थी। दूर किसी ऋषि का तपोवन भी दृष्टि में आ रहा था। महाराज को यह स्थान सब प्रकार से उचित लगा।

पहले महाराज ने नदी में स्नान किया। पूजा-अर्चना की, इसके बाद राजकीय परिवार के अन्य लोगों ने, तत्पश्चात् पदक्रमानुसार अन्य लोगों ने स्नान किया। सुकन्या पहली बार नदी में स्नान कर रही थी। कहाँ राजोद्यान का सरोवर, कहाँ नदी का स्नान - दोनों की समानता ही कहाँ है?

महाराज व महारानियाँ स्नान, ध्यान और भोजन से निवृत हो आराम करने के लिए अपनी-अपनी शिविकाओं में चले गए और राजकुमारी सुकन्या अपनी सखियों के साथ घूमने निकल गई।

वह फूल-पत्तों को छूकर, सूँघकर देखती, तितलियों को पक ती, चपल हिरणी-सी वहाँ पहुँची जहाँ एक मिट्टी के टीले पर दो शाल्मली के वृक्ष उगे थे। उन वृक्षों से हिरण अपनी पीठ सहला रहे थे तथा मिट्टी के ढूह से लाल-लाल दो प्रकाश-बिन्दु चमक रहे थे। कौतुहल हुआ सुकन्या को। सखियों के साथ ढूह के और निकट आ गई तथा गौर से देखने लगी। एक सखी ने टोका -

'राजकुमारी सुकन्या ! आप इतने ध्यान से क्या देख रही हैं?'

'तुम भी देखो अलका ! ये कैसे अजीब से दो प्रकाश-बिन्दु हैं।'

सखियों ने ध्यान से देखा। तभी सुषमा ने कहा -

'राजकुमारी जी, आइये यहाँ से चलें। वनों के रहस्य ब े विकट होते हैं। ये सबकी समझ में नहीं आते। क्या पता कोई दुरात्मा ही हो। सुना है वनों में निशाचर रहते हैं।'

'तुम ठीक कह रही हो सुषमा। मुझे इन प्रकाश-बिन्दुओं से भय लग रहा है।' अलका ने कहा।

'इस निर्जन में दूर-दूर तक हमारे अलावा कोई अन्य दिखाई नहीं दे रहा। हम घूमते-घूमते शिविकाओं को काफी पीछे छो आए हैं। सुषमा ने कहा।

'सम्भव है महाराज को हमारे इधर आने की सूचना ही न हो।' मुक्ता ने आशंका जताई।

'हमने महाराज से आज्ञा ही कब ली थी? यदि महाराज को मालूम होता तो क्या इस प्रकार अकेले घूम सकते थे? सैनिक, अंगरक्षक, दास-दासियाँ साथ न होते।'

सभी सखियाँ आपस में एक-दूसरे से बोलतीं-बतियातीं सघन वृक्षों की छाया में बैठ गईं और राजकुमारी सुकन्या ने जिज्ञासा-वश वहीं से एक तृण उठा प्रकाश-बिन्दुओं को कुरेद दिया। उन

प्रकाश-बिन्दुओं का कुरेदा जाना था कि उनसे रक्त-प्रवाह होने लगा। राजकुमारी सुकन्या यह देख भयभीत हो सखियों के साथ अपने शिविर में लौट आई।

लौटकर राजकुमारी अपनी शैय्या पर लेट गई। आँखें मूँदकर उन प्रकाश-बिन्दुओं के बारे में सोचने लगी। क्या सचमुच वह कोई रहस्य था या कोई जीव-जन्तु? लौटे हुए अभी कुछ पल ही बीते थे कि तूफान आ गया। मेघ गरजने लगे, बिजली क कने लगी, तेज़ हवाओं के साथ अँध  चलने लगे। पहा  टूट-टूटकर गिरने लगे। शिविकाएँ वायु-वेग के कारण हिलने-डुलने लगीं। अचानक आए इस तूफान से भगद  मच गई। हा ी, घो े जो खुले मैदान में वक्षों से बँधे थे, उन्हीं वृक्षों के गिर जाने से आहत हो गए, जो खुले मैदान में घास चरने के बाद आराम से बैठे जुगाली कर रहे थे, उठकर इधर-उधर भागने लगे। एक चीख-पुकार-सी मच गई। दास-दासियाँ भयभीत हो एक-दूसरे पर गिरती-प ती शिविकाओं से बाहर निकल आईं। तभी सुकन्या ने देखा कि सारा राजसी प ाव सैक ों कोपीनधारी साधुओं से घिरा है। उनके हाथों में दण्ड हैं, युद्ध में काम आने वाले शस्त्र हैं। वे कठोर सावधान की मुद्रा में ख े हैं। उनके तन क्रोध से काँप रहे हैं। आँखें लाल अंगारों की तरह हैं। बढ़े हुए केश, नंगे बदन, पुष्ट देह - यह देखकर सुकन्या सहम उठी।

ये सब कौन हैं और क्या चाहते हैं? क्या हम सबको बंदी बनाने आये हैं? लेकिन क्यों? क्या बिना इनकी अनुमति के पिता महाराज ने यहाँ रुककर कोई अन्याय किया है? या ये सब जंगली लुटेरे हैं? सबके असावधान हो आराम करने पर ये आक्रमण कर देना चाहते हैं? अपने सैनिक तो इस अचानक आए तूफान से अपने आप को उबार भी न पाए होंगे कि इन लोगों के बीच घिर गए लगते हैं।

जंगली लुटेरे सोचकर वह भय से काँप उठी। ल कियों और शाही परिवार की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार की कल्पना-मात्र से उसका शरीर काँप उठा। उसने अपनी शिविका के अंदर झाँकने का प्रयास किया, कोई कहीं भी नज़र नहीं आया। उधर तूफान का वेग अपनी गति पर था।

उसने आवाज़ लगाकर परिचारिका को बुलाना चाहा लेकिन इतने शोर-गुल और आतंक के कारण उसकी आवाज़ कंठ से बाहर न निकल सकी। उठने की कोशिश में लगा जैसे उसका शरीर बेजान हो गया है। फिर भी उसने अपनी हिम्मत को समेटा। वस्त्रों में छिपे आपत-अस्त्र को टटोलकर देखा। फिर अपने वस्त्र ठीक किए। अकेले ही महाराज की शिविका की ओर जाने का मन बनाया।

लेकिन आगे बढ़ते कदम फिर रुक गए - क्या अकेले इस समय महाराज की तरफ जाना उचित होगा। क्या ये लोग उसे वहाँ जाने देंगे या रास्ते में ही रोककर उसके साथ. . . .? पता नहीं दोस्त हैं या दुश्मन। बिना विचार किए कोई कदम उठाना उचित नहीं है। क्या पता उसकी उपस्थिति महाराज के लिए कोई अन्य संकट ही उपस्थित कर दे। क्या महाराज इतने असावधान होंगे कि उन्हें इन लोगों ने आसानी से बंदी बना लिया होगा? कभी भी उनकी नज़र हमारी शिविकाओं की ओर भी प  सकती है। प्राकृतिक तूफान को टालना तो महाराज के लिए भी असंभव है। उसने छुप-छुपकर सावधान रहकर शिविकाओं के ही अन्तः मार्ग से पिता महाराज की शिविका की ओर प्रस्थान किया।

उधर महाराज शर्याति अपने रथों, पालकियों, घो ों और हाथियों को नष्ट होते असहाय-से देख रहे थे और सोच रहे थे कि यहाँ नदी के किनारे ऐसा निरापद स्थान कहाँ होगा जहाँ इस प्राकृतिक आपदा के रहते राहत पाई जा सके। हालाँकि सैनिक और अंगरक्षक इस विपत्ति में भी महाराज की शिविका को घेरे सावधान की मुद्रा में ख े थे। अन्य सैनिक पालकियों, रथों तथा पशुओं की सुरक्षा में लगे थे। तभी शिविर के बाहर से गुरु-गंभीर वाणी सुनाई दी। कोई महाराज को पुकार कर चेतावनी दे रहा था।

'राजा शर्याति, तेरी मूर्खा पुत्री के कारण ही यह तूफान आया है।'

अपनी पुत्री का नाम सुनकर महाराज, और महाराज के शिविर में पर्दे के पीछे छुपी ख ी सुकन्या, दोनों एक-साथ चौंक उठे। मुख्य द्वार से महाराज के इशारे से पर्दा हटा दिया गया। दोनों की दृष्टि एक-साथ बाह्य द्वार पर प ी - एक कृश-वदन, हड्डियों का ढाँचा-मात्र, मिट्टी व पे  के पत्तों से लिपटा जर्जर वृद्ध तपस्वी ख ा है। उसकी आँखों से लहू बह रहा है। वह देखने में ब ा वीभत्स लग रहा है।

'मेरी पुत्री इस तूफान का कारण कैसे है? आप कौन हैं? कृपया अपना परिचय दें। यदि मेरी पुत्री द्वारा आपको जान-बूझकर अकारण सताया गया है तो अवश्य उसे दण्डित किया जाएगा। हे महातपस्वी ! आपके नेत्रों से रुधिर क्यों बह रहा है?'

'राजन् मैं ऋषि च्यवन हूँ। इस तपोवन में काफी समय से तप कर रहा हूँ। तुम्हारी बेटी ने तपस्यारत मेरी आँखें फो कर मुझे शारीरिक कष्ट ही नहीं दिया, बल्कि मेरी तपस्या में विघ्न डाला है।'

'क्षमा कीजिए ऋषिवर, अपना क्रोध शांत कीजिए। पुत्री सुकन्या से अनजाने में ही हुआ होगा। वह आपके नेत्र क्या फो ेगी, वह तो किसी भी जीव को कष्ट में नहीं देख सकती।'

'महाराज ! यह आपका न्याय नहीं पुत्री स्नेह ही बोल रहा है। आप क्या न्याय करेंगे। जरा उठकर अपने शिविर से बाहर झाँकिए। आपका समस्त प ाव हमारे शिष्यों द्वारा घेरा जा चुका है। वे शिष्य अपने गुरु के अपमान का बदला लेने के लिए तत्पर हैं। आपकी शिविकाओं को चुटकियों में मसल देंगे। आपके शाही परिवार की महिलाओं को बंदी बनाकर ले जाएँगे। आपके सैनिक मेरे शिष्यों से घिरकर पहले ही अपने शस्त्र डाल चुके हैं। यहाँ आपका नहीं मेरा शासन चलता है।' च्यवन ऋषि क्रोध में पाँव पटकने लगे।

पर्दे के पीछे ख ी राजकुमारी सुकन्या काँप उठी। क्या सखी अलका और सुषमा ने ठीक कहा था। वनों के रहस्य ब े विकट होते हैं। वे दो प्रकाश-बिन्दु इस तपस्वी की आँखें कैसे हो सकती हैं? वह तो मिट्टी का एक ढेर-मात्र था। उस पर तो वृक्ष भी उगे थे, जिनसे हिरण अपनी पीठ सहला रहे थे। उसे स्मरण हो आया कि कुछ लुटेरे ढोंग करके, शरीर पर मिट्टी लपेटे, पे के पत्ते बाँधे, मिट्टी के ढूहों में छिपे प े रहते है। किसी अकेली स्त्री को पाकर उसका बलात् अपहरण कर लेते हैं। कहीं उसके खिलाफ भी तो ऐसी कोई साज़िश नहीं?

महाराज को भय दिखाकर पूरे प ाव को अपने शिष्यों द्वारा घिरवाकर यह दुष्ट व्यक्ति क्या चाहता है? यह व्यक्ति तपस्वी तो बिलकुल भी नहीं लगा। तपस्वी, मुनिजन क्रोध नहीं करते, क्षमा करते हैं। वे शीलवान् और धैर्यवान् होते हैं। उसका मन हुआ कि दरबान से कह इस व्यक्ति को धक्के लगवाकर निकलवा दे लेकिन पिता महाराज अपनी पुत्री पर लगाए गए आरोप को सुनकर भी विनीत क्यों बने हैं? उनका हाथ अब तक अपने खड्ग पर क्यों नहीं गया। जिस दुष्ट व्यक्ति ने अपनी गंदी ज़ुबान से उनकी बेटी का नाम लिया है, वह सिर अभी तक ज़मीन पर क्यों नहीं गिर प ा? क्रोधावेश में उसका हाथ अन्तः-वस्त्रों में छुपाई कटार पर गया कि वही इस दुष्ट का गला काट दे जो उसके पिता महाराज का अपमान कर रहा है।

तभी उसके विवेक ने ललकारा, क्या पिता महाराज के न्याय तथा स्नेह से उसका विश्वास उठ गया है? महाराज के होते हुए उसे दण्ड देने का अधिकार कहाँ है? पिता महाराज के न्याय क्षेत्र में किसी भी आत्मीय परिजन का प्रवेश निषिद्ध है। किसी प्रकार अपने क्रोध को संयत करते हुए वह आगे की कार्यवाही देखने लगी।

महाराज ने एक उ ती-सी नज़र बाहर शस्त्रहीन ख े अपने सैनिकों पर डाली। अंगरक्षक भी भय से काँप रहे थे। उनके हाथों की थरथराहट बता रही थी कि उनकी भुजाओं का बल ऋषि के क्रोध के सम्मुख साथ छो चुका है। वे एकदम अकेले प गए हैं। उन्हें अफसोस हुआ कि ऐसे तपस्वियों को राज्य संरक्षण देकर इतना शक्तिशाली बनाना स्वयं के लिए घातक हुआ है। वे इन तपस्वियों के आगे लाचार हो गए हैं। कहाँ ये आश्रम तपश्चर्या के साथ-साथ राजपुत्रों के लिए शस्त्र-संचालन सीखने, शास्त्र पठन-पाठन के मुख्य केन्द्र हैं। नवीनतम आधुनिक शस्त्रों का निर्माण भी यहीं होता है, लेकिन ये ही क्या एक राजा के विरुद्ध शस्त्र उठाकर ख े हो जाएंगे? कितने कृतघ्नी और कपटी हैं ये। लेकिन इस समय वे क्या करें? क्षमा माँग कर ही इस स्थिति से उबरा जा सकता है। महाराज और भी विनीत हो उठे - 'क्षमा करें ऋंषिवर, अज्ञानतावश मेरी पुत्री द्वारा किए गए अपराध के लिए मुझे और मेरी पुत्री को क्षमा करें या ऐसा कोई उपाय बताएँ जिससे आपका क्रोध शांत हो सके। मैं अभी राजवैद्य को बुलाकर आपके उपचार की व्यवस्था करता हूँ।' पाँव प लिए महाराज ने।

'नहीं महाराज, मैं अपनी तपस्या में विघ्न डालने वाले को क्षमा नहीं कर सकता।' क्रोधित हो उठे ऋषि।

'आप आज्ञा दें ऋषिवर, मेरी बेटी को कैसा दण्ड देना चाहते हैं, जिससे आपका क्रोध शांत हो सके? राजकीय परिवार का कोई भी व्यक्ति प्रजा के हित से ब ा नहीं है। राजाओं ने हमेशा प्रजा हित में अपने स्वार्थ की आहुति दी है। आप आज्ञा करिए।'

'दण्ड-स्वरूप मुझे आपकी पुत्री चाहिए। वरना आप देख ही रहे हैं....।' धमकी भरी आवाज़ महाराज के कानों में गूँजी। राजकुमारी सुकन्या और महाराज दोनों ने एक-साथ ऋषि की बात सुनी।

दोनों की मानसिक अवस्था लगभग एक-सी हो गई। लगा, जैसे कानों में गरम सीसा पिघलाकर उँडेल दिया हो। एक बार को महाराज के चेहरे पर क्रोध के भाव आए, भुजाएँ फ कीं, लेकिन तत्काल परिस्थितिवश शांत हो गए और बोले - 'ऋषिवर क्या इस दण्ड के विषय में आपने भली-प्रकार सोच लिया है? एक बार पुनः आप विचार कर देखें।'

'हमें विचार करने के लिए कह रहे हैं महाराज? बिना विचारे हम कुछ नहीं करते महाराज। राजकन्या की तो बात ही क्या, हमारे मात्र एक इशारे पर समस्त राज-परिवार की महिलाएँ बलात् उठा ली जाएँगी। इस समय आप हमारे बंदी हैं।'

'एक राजा को इस प्रकार विवश करना कैसा तपोबल है आपका? कैसी तपस्या है आपकी? धिक्कार है ऐसे साधु-वेश को जो बलात् स्त्रियों पर अधिकार करता है। ये तपोवन नहीं राहज़नी के अड्डे हैं। मैं इन सबको नष्ट कर दूँगा।' महाराज को भी क्रोध आ गया।

'एक बंदी को इतना क्रोध शोभा नहीं देता महाराज। आप अपने राज्य तक सकुशल पहुँच पाएँगे तभी तो. . . .।' और तभी ऋषि के सैक ों दण्डधारी शिष्यों ने शिविका में प्रवेश कर महाराज को घेर लिया।

अपने पिता महाराज का अपमान और उनकी विवशता पहली बार राजकुमारी सुकन्या ने अनुभव की। उसने समझ लिया कि राज्य की वेदी पर उसके बलिदान का वक्त आ गया है। पिता के सिर को वह झुकने नहीं देगी। उसके कारण यदि राज्य बचता है तो पिता और राज्य के लिए हँसते-हँसते अपना बलिदान कर देना चाहिए। दुष्ट तपस्वी होकर भी नारी देह के प्रति आसक्ति रखते हैं। पाखण्डी और ढोंगी हैं सब। उसने घृणा से ज़मीन पर थूका। मन ही मन कुछ निश्चय किया और पर्दा हटाकर ऋषि च्यवन के सम्मुख उपस्थित हो गई।

'मैंने आपकी शर्त और दण्ड दोनों सुन लिए है ऋषिवर। मैं प्रस्तुत हूँ। अपराध मैंने किया है तो प्रयश्चित भी मुझी को करना चाहिए। लेकिन मेरी भी एक शर्त है। मुझे ग्रहण करने के बाद आप समस्त प्रजा, परिजनों व पिता महाराज को ससम्मान, सकुशल अपने इस तपोवन से जाने देंगे।'

ऋषि च्यवन कुछ पल अपलक राजकुमारी सुकन्या को देखते रहे। फिर मुस्कराकर बोले - 'महाराज आपसे ज्यादा समझदार आपकी पुत्री है। मुझे आपकी पुत्री की शर्त स्वीकार है।'

एक ही इशारे से समस्त ऋषि-शिष्य शिविका से बाहर हो गए। तूफान धीरे-धीरे थमने लगा। सभी ने जैसे राहत की साँस ली। लेकिन महाराज विकल हो उठे - 'सुकन्या बेटी ! तूने यह क्या कह दिया? मेरे लिए अपना मोह छो  दिया। तू इन सब के बीच कैसे रह पाएगी?'

'पिता महाराज ! अभी-अभी आपने कहा कि राजधर्म और प्रजाहित पर राजा के स्वार्थ बलिदान होते रहे हैं। मुझे आपकी बात रखने का एक अवसर मिला है। आशिर्वाद दीजिए कि आपकी बेटी में राजधर्म पर उत्सर्ग होने की भावना कम न हो। राजधर्म के लिए मैं हर जन्म में आपकी पुत्री बनूँ।' राजकुमारी सुकन्या ने महाराज के पाँव छू लिए। महाराज ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया और अधीर हो उठे - 'मुझे तुझ पर गर्व है बेटी। तुझ जैसी बेटी पाकर कौन पिता धन्य न होगा। लेकिन मेरा कलेजा फटा जा रहा है।'

'आप धैर्य धारण करें पिता महाराज। मेरा मोह छो  प्रस्थान की तैयारी कीजिए। आपका गन्तव्य ही मेरा अभीष्ट है।'

महाराज इशारा समझ गए। उन्होंने सैनिकों को प ाव उठाने का आदेश दिया। तब तक सब कुछ शांत हो चुका था।

प ाव उठ गए। सैनिकों के साथ महाराज ने प्रस्थान किया। वे अधीर हो पुत्री की ओर देख रहे थे। माताएँ शोक की प्रतिमाएँ बनी बैठी थीं। कहीं कोई शोर नहीं था। मात्र कदमों की खामोश पदचाप ऋषियों के साथ एकाकी ख ी राजकुमारी सुकन्या सुन रही थी। पूरा काफ़िला पदाघात से उठती धूल के गुबार में ढँक गया। जब तक ध्वनि सुनाई देती रही, पदचाप गूँजती रही, सुकन्या देखती रही, मौन, शांत, अविचल। जैसे ही काफ़िला आँखों से ओझल हुआ, ऋषि च्यवन ने पुकारा - 'तुम्हारी शर्त पूरी हुई राजकुमारी सुकन्या। अब हम भी प्रस्थान करें।'

लेकिन ये क्या ! खून से लथपथ राजकुमारी सुकन्या की देह ही वहाँ प ी थी। अपनी कटार छाती में भोंक कर उसने राजधर्म पर अपना उत्सर्ग कर दिया था।

## निर्णय की घ ी

**अक्षय गोजा**

उपस्थित होती रहती है जीवन में
निर्णय की घ ी।
मुश्किल होता है
शुभकर और फलदायी फैसला ले पाना।
चाहिए उचित मार्गदर्शन
उपलब्ध होता
काफी सोच-विचार से
परिस्थितियों के ज्ञान से
परिणामों के अनुमान से
सुविज्ञों की सलाह से
किंतु सर्वोपरि, अंतःकरण के निर्देश से।
कभी भूल नहीं करता
हमेशा सत्य शुभ होता है।
मेहनत, चिन्तन, अनुमान से नहीं
मिलता शांत, सुस्थिर, निर्विकार चित्त से।
अदम्य तप-साधना है
कष्टप्रद किंतु फलदायी।
किया जा सकता है किसी भी घ ी
सहज, शीघ्र, सही निर्णय।

# ग़ज़ल को ग़ज़ल ही रहने दीजिये

डॊ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त अग्रहरि

'ग़जब किया तेरे वादे पे ऐतबार किया
तमाम रात क़यामत का इन्तज़ार किया
हँसा-हँसा के शबे-वस्ल अश्कबार किया
तसल्लियाँ मुझे दे-दे के बेकार किया।'

इक़बाल

ग़ज़ल अपने सम्पूर्ण व्यापकत्व तथा अपने सीमित सघनत्व में इतना अहम् शब्द है कि इसे सही अर्थों में परिभाषित करना कठिन है। यूँ तो युगानुसार इसकी परिभाषा बदलती गयी है, फिर भी इसमें कहीं कुछ शाश्वत है जो इसका मिज़ाज़ है और जिसे बदला नहीं जा सकता।

ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है नारी के सौन्दर्य का वर्णन या प्रेमिका से वार्तालाप (देखिए 'उर्दू-हिंदी शब्दकोष - उत्तर प्रदेश की हिन्दी साहित्य संस्थान' - लखनऊ)। ग़ज़ल की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मतों के होते हुए भी सब यह स्वीकार करते हैं कि ग़ज़ल की पैदाइश पहले फारसी में हुई और मुग़लकाल में यह भारत आई। हिन्दुस्तान में फारसी का स्थान उर्दू और फिर हिंदी ने ले लिया। हालाँकि शाही दरबारों में उर्दू का वर्चस्व कायम रहा और आगे चल कर यह हिंदी ग़ज़ल के रूप में काव्य-विधा का एक प्रकार बन गई।

सही अर्थों में ग़ज़ल का उद्‌भव गुलाम वंश के बादशाह क़ुतुबुद्दीन ऐबक के ज़माने में हुआ। यह वो समय था जब शासक और शासित दोनों की भाषाओं में मिश्रण हुआ। अमीर खुसरो (१२५५-१३२४) इसके सर्वप्रथम कवि कहलाये।

ग़ज़ल मानसिक ऐय्याशी नहीं बल्कि ज़िन्दगी की कडुवाहट-भरी पी ा है।

ग़ज़ल को ग़ज़ल ही रहने दीजिए। उसे परिभाषित करने की कोशिश न कीजिए। जैसे सौन्दर्य देखा जा सकता, सराहा जा सकता है, पर परिभाषित नहीं किया जा सकता, वैसे ही ग़ज़ल को अपरिभाषित ही रखा जाए तो बेहतर होगा।

दिल के ज़ज़्बात को कम से कम शब्दों में ज्यादा असरदार बनाने के हूनर को वास्तविक में ग़ज़ल कहा जा सकता है। ग़ज़ल का हर शेर मानों जैसे बूँद-बूँद से सागर भरता हो, ऐसा जान प ता है। ग़ज़ल उपमाओं संकेत और प्रतीकों में उपयोग की कला है।

इकबाल, मीर और ग़ालिब और दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल की दुनिया में एक नई रोशनी दी। मीर की कविता-ग़ज़ल में करुण-रस की प्रधानता है। कहा जाता है कि मीर का प्रत्येक शेर ख़ून की एक बूँद है। मीर ने स्वयं कहा है -

'उम्र भर हम रहे शराबी से
दिले पुरखूँ की एक गुलाबी से।'

ग़ालिब ने मीर की महानता को स्वीकार करते हुए कहा है -

'रेखता के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।'

(रेखता - उर्दू)

इकबाल का एक प्रसिद्ध शेर है -

फूल की पत्ती से कट सकता है हीरे का जीगर
मर्दे नादाँ पर कलामें नर्मो नाज़ुक वे असर।'

जो भी हो ग़ज़ल अपने-आप में अजब है, ग़जब है। ग़ज़ल को परिभाषाओं की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। ग़ज़ल चाहे हिन्दी भाषा में हो या उर्दू भाषा में या अरबी भाषा में परन्तु ग़ज़ल तो ग़ज़ल ही है।

# नये वर्ष में

## सरन घई

सरन घई का वंदन प्रभुवर कर लीजे स्वीकार,
काम मेरे इस नये वर्ष में कर देना दो-चार।
कितने साल से पेंडिंग मेरी एप्लीकेशन धन की,
तुम सुनते हो सबकी लेकिन करते हो बस मन की,
रेस, लॉटरी कुछ भी जिता दो या बिंगो ही दे दो,
मेरा काम करा दो भगवन चाहे कमीशन ले लो।
मत निज दास पे भगवान कीजिये इतना अत्याचार,
फाइल मेरी पे मुहर लगा कर कर दो बे ा पार।
सरन घई का वंदन प्रभुवर कर लीजे स्वीकार,
काम मेरे इस नये वर्ष में कर देना दो-चार।
बी.एम.डब्ल्यू.कार के लिए कितना तुम्हे कहा है,
कार का ब्रोशर कब से प्रभु तेरे चरणों में रखा है।
बी.एम.डब्ल्यू.अगर न सही, हंडई कार दिला दो,
जी.एम., होंडा, सुज़ूकी, करोला, कोई कार दिला दो।
टीन की छत के नीचे प्रभुवर दे दो पहिये चार,
बिना कार के प्रभुवर तेरा दास फिरे बेकार।
सरन घई का वंदन प्रभुवर कर लीजे स्वीकार,
काम मेरे इस नये वर्ष में कर देना दो-चार।
थ्री बेड-रूम का एक मकान, दो कारों की गैराज,
ढाई हो यदि वाश-रूम तो दास करेगा नाज़।
एक छोटी-सी किचन जहाँ पर पत्नी राज करेगी,
देख बेडरूम की शोभा साली भी आह भरेगी।
लव की सीट पे हम दोनों जब बैठ करेंगे प्यार,
उस दिन हम समझेंगे प्रभुवर तुम हो पालन हार।
सरन घई का वंदन प्रभुवर कर लीजे स्वीकार,
काम मेरे इस नये वर्ष में कर देना दो-चार।
अगला साल चढ़ेगा तो प्रभु बढ़ जायेगी माँग,
कैलेंडर की तरह कहीं फाइल मत देना टाँग।
ज्यूलरी और डायमंड की अगले वर्ष माँग रखूँगा,
इतना ही दे दो वरना दुगुनी डिमांड रखूँगा।
फिफ्टी के की जॉब दिला कर सुखी करो घर-बार,
सरन घई का वंदन प्रभुवर कर लीजे स्वीकार,
काम मेरे इस नये वर्ष में कर देना दो-चार।

# स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

| | |
|---|---|
| अनमोल हास्य क्षण | ( नाटक-संग्रह ) |
| जीवन के रंग | ( काव्य-संग्रह ) |
| दर्दे-ज़ुबाँ | ( नज़्म व ग़ज़ल संग्रह ) |
| आज का पुरुष | ( कहानी-संग्रह ) |
| जीवन-निधि | ( काव्य-संग्रह ) |
| आत्म-गुंजन | ( आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत ) |
| हास-परिहास | ( हास्य कविताएँ ) |
| ज़ज़्बातों का सिलसिला | ( काव्य-संग्रह ) |
| The Galaxy Within | (A collection of English poems) |
| अनुभूतियाँ | ( काव्य-संग्रह ) |
| काव्य-वृष्टि | ( संकलन एवं संपादन ) |
| पूरब-पश्चिम | ( आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह ) |
| बौछार | ( संकलन एवं संपादन ) |
| काव्य हीरक | ( संकलन एवं संपादन ) |
| संजीवनी | ( स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख ) |
| उपनिषद् दर्शन | ( अध्यात्मिक ) |
| काव्य-धारा | ( संकलन एवं संपादन ) |
| काव्यांजलि | ( काव्य-संग्रह ) |
| अनोखा साथी | ( कहानी-संग्रह ) |

## प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत

Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित